RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

दिसंबर, 2020

वर्ष : 12, अंक : 03, पूर्णांक : 30

संस्थापक–प्रकाशक–संपादक

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

संरक्षक परिषद

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. कृष्णा खत्री
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय

संपादक परिषद

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री (संपादक)
डॉ. प्रशांत द्विवेदी (सह-संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय (उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह (उप-संपादक)
डॉ. चुकी भूटिया (उप-संपादक)
डॉ. ऋचा द्विवेदी (उप-संपादक)
डॉ. आरती वर्मा (उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद

डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री राम सुभाष
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा

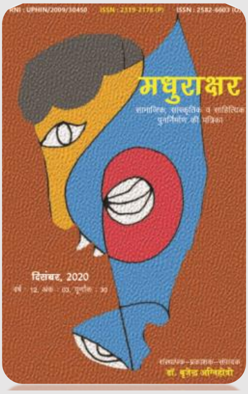

आवरण : **रोहित प्रसाद 'पथिक'**

संस्थापक–प्रकाशक–संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

दिसंबर, 2020

वर्ष : 12, अंक : 03, पूर्णांक : 30

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

मूल्य

एक प्रति : 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक : 110 रुपये
त्रैवार्षिक : 300 रुपये
आजीवन : 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक : 150 रुपये
त्रैवार्षिक : 450 रुपये
आजीवन : 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक : 6 $
वार्षिक : 24 $
आजीवन : 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक- **10946443013** (IFS Code- SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाह्य-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 60 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी
बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

मधुराक्षर

दिसंबर, 2020

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में...

संपादकीय

अपनी बात : बृजेन्द्र अग्निहोत्री .05

कथा–साहित्य

जैसी करनी वैसी भरनी : डॉ. विकास कुमार*.07*

तेरे शहर में... : खेमकरण 'सोमन'*.14*

लखनऊ में एक मौत *: दिलीप कुमार .21*

दौलतमंद : मौसमी चंद्रा*.32*

सुरंग के चौकीदार : संदीप शर्मा*.35*

पीले दरख़्त *:* नीरजा हेमेन्द्र *.43*

काली : महेश शर्मा *.52*

सरप्राइज *:* डॉ. गोपाल निर्दोष*.75*

उम्मीदों की डोर *:* सरोज राम मिश्रा *.79*

अस्तित्व : डॉ. पूरन सिंह*.84*

प्रतिस्पर्धा : महेश कुमार केशरी*.85*

टाफी चूसने वाली *:* पूनम पांडे *.87*

बूढ़ा बरगद और राधा : शुभम पांडेय 'गगन' .89

चार पैसे की नौकरी : अर्विना .91

संस्मरण

कभी ना भूखा सोया, ना अभाव में रोया *:* राजेश कुमार *.110*

कथेतर गद्य

छत्तीसगढ़ के आदिवासी एवं गोदना–प्रथा *:* मनीष कुमार कुर्रे *.93*

असम के सांस्कृतिक प्रतीक *:* वीरेन्द्र परमार *.102*

नारी शक्ति : अस्मिता और अस्तित्व *:* पूजा सचिन धारगलकर *.117*

एक बेहतर दुनिया के लिए *:* प्रो. गिरीश्वर मिश्र*.128*

आविल और सिंग्विल्ल*:* डॉ. अनीता पंडा*.136*

साहित्य की लघु विधा– लघुकथा *:* अंकुश्री *.143*

नया रावण*:* दीपक क्रांति *: 147*

काव्य–सुरसरि

यकीन : शालिनी सिंह .*150*
उनकी नजरों में: प्रेम नंदन .*151*
ग़ज़ल : केशव शरण.*152*
अकिंचन : नवीन गौतम .*153*
पुस्तकालय की व्यथा : प्राची अनर्थ .*154*
ऑनलाइन के भूत: *स्नेहलता* .*155*
कुमुदिनी : *रानी सिंह* .*157*
गजल : सलिल सरोज .*158*
तालाब, नदी और सागर : डॉ. जयप्रकाश तिवारी .*159*
नियति, संकट : मोतीलाल दास़ .*160*
छठ मइया: डॉ. दीपा 'दीप'.*161*
कविता मरती नहीं : डॉ. महिमा श्रीवास्तव.*163*
नारी नहीं बेचारी! : आसिया फारूकी .164
चंद्र : मधु वैष्णव 'मान्या' .165
अस्मिता की आवाज : डॉ. गरिमा त्यागी .166
गजल : नज़्मसुभाष .168
कहानी : डॉ. शैलेश शुक्ला .169
एक सुकून साँझ की : पूजा .170
तुम्हारी मौजूदगी का एहसास : देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव .171
अंतर, औरत : अनिता रश्मि .172
गजल : प्रेम बजाज .173

संपादकीय

हम लिखते क्यों है ? यह प्रश्न अक्सर सुनने को मिलता है। सभी रचनाकारों का जवाब अपने– अपने हिसाब से अलग–अलग होता है! कोई समाज के पथ प्रदर्शन के लिए लिखता है, कोई समाज को दिशा–बोध देना चाहता है। कोई समाज में व्याप्त बुराईयां समाप्त करना चाहता है तो कोई अपनी आन्तरिक खुशी के लिए लिखता है। रचनाकार को इस संसार में विशिष्ट श्रेणी प्राप्त है। यह भी सर्वसम्मति से माना जाता है कि रचनाकार में कुछ विशेष गुण होते हैं जो उसे अन्यों से विशेष बनाते हैं और यह गुण प्रकृति प्रदत्त होते हैं। जिन्हें रचनाकार अपने अभ्यास द्वारा निखारता है।

हम किसी कार्य को क्यों करते है ? यह प्रश्न यह सिद्ध करने में समर्थ है कि हम उस कार्य से किसी परिणाम की इच्छा कर रहे हैं। हमारे आराध्य ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने परिणाम की इच्छा करने का निषेध किया है। परिणाम क्या होगा ? इसके बारे में हमें सोचने की कोई जरूरत नहीं है, आवश्यकता है कर्म करने की, पूरी निष्ठा के साथ।

प्रकृति प्रदत्त गुणों के द्वारा साहित्य सृजन हम कर रहे हैं अर्थात परमशक्ति की इच्छा से रचनाधर्मिता का निर्वाह हमारे द्वारा हो रहा है। फिर हम क्यों लिखते हैं ? यह सोचने की हमें क्या आवश्यकता है। जितने रचनाकारों ने महान रचनाओं का सृजन कर महानता प्राप्त की, क्या उन्होंने कभी सोचा कि वह क्यों रच रहे है ? वस्तुतः यदि वह यह सोचने में अपने समय को जाया करते तो आज हमें वह महान ग्रन्थ विरासत में न मिलते। आज जरूरत इस प्रश्न की नहीं है कि हम लिखते क्यों है, जरूरत है जो हम लिखते हैं... क्या उसे जीते हैं।

– बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

जैसी करनी वैसी भरनी

डॉ. विकास कुमार
अमगावाँ, शिला, सिमरिया, चतरा, झारखण्ड–825401
vikash346@gmail.com

चतुर्भुज सिंह! शायद उनके माँ–पिताजी ने यही सोचकर उनका नाम 'चतुर्भत' रखा होगा कि भविष्य में उनके भी चार भुजा होंगे। चार भुजा, यानी चार सुपुत्र। ...आखिर, किसी पिता के पुत्र ही तो उनकी भुजा होते हैं। खैर, यहाँ नाम का विश्लेषण कोई अहम् मुद्दा नहीं है, बल्कि अहम् मुद्दा तो कुछ और ही है...।

प्रो. चतुर्भुज सिंह वर्तमान में छोटानागपुर विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान के संकायाध्यक्ष हैं। इसके पूर्व भूगोल विभाग में भी विभागाध्यक्ष रहे थे और साथ में विश्वविद्यालय के कई प्रशासनिक पदों को सुशोभित भी कर चुके थे। वैसे हैं तो मूलतः प्रोफेसर ही, लेकिन अपने व्याख्यानों अथवा भाषणों में खुद को भूगोल का विद्यार्थी बताते हैं। शायद यह उनकी महानता हो या फिर लोगों के समक्ष खुद को अप्रत्यक्ष रूप से महान साबित करने का नुस्खा। भगवान ने उन्हें अपने नाम के मुताबिक चार पुत्रों का पिता होने का गौरव प्रदान किया था। शायद इसीलिए चारों पुत्रों का नामकरण भी राजा दशरथ के पुत्रों के नाम पर कर दिया था उन्होंने। ...फिर चारों की परवरिश भी उन्होंने बेहतर ढंग से किया था। पढ़ाई–लिखाई में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। और छोड़ते भी कैसे ? कोई छोटे–मोटे आदमी तो थे नहीं, पैसे वाले होने के साथ–साथ बुद्धिजीवी भी थे। बड़ा लड़का राम सिंह, एमबीबीएस करके हजारीबाग में मल्टीस्पेसिलिटी हॉस्पीटल खोलकर बहुत बड़ा व्यवसायी बन बैठा था, मंझला लड़का भरत सिंह

भी चतरा जिले का वरीय अभियंता का पद प्राप्त कर खूब पैसे बना रहा था और संझला लड़का लक्ष्मण सिंह भी सिमरिया प्रखण्ड का प्रखण्ड विकास पदाधिकारी के पद के सुशोभित कर अपना विकास दिन दूनी और रात चौगुनी दर से किये जा रहा था। रही चौथे लड़के शत्रुघ्न सिंह की बात, तो उसकी बात ही बहुत निराली थी। एक तो बड़े बाप का बेटा, साथ में तीन काबिल भाईयों का प्यारा भाई और वैसे भी छोटा लड़का तो माँ–बाप का सबसे दुलारा होता ही है, सो उसके बिगड़ने की सभी अनुकूल परिस्थितियां सौ प्रतिशत मौजूद थी सो, हुआ भी वह एकदम से नकारा, निठल्ला। जैसे–जैसे चतुर्भुज सिंह का छोटा लड़का शत्रुघ्न सिंह बड़ा हो रहा था, वैसे–वैसे चतुर्भुज सिंह की परेशानियाँ बढ़ती ही जा रही थीं। काफी कठिन मेहनत से उन्होंने नाम और सोहरत कमा रखे थे और फिर उनके तीनों लड़कों ने तो बाप का नाम भी काफी ऊँचा कर दिया था अपनी–अपनी सफलताओं को अर्जित करके, पर उनका छोटा लड़का शत्रुघ्न सिंह तो उनके नाम को मिट्टी में मिलाने के लिए ही जैसे पैदा हुआ था। पढ़ने–लिखने में तो वह साढ़े बाइस था ही, मगर शराब, कबाब और शबाब में काफी आगे था। शहर के बिगड़ैल लड़कों से दोस्ती भी हो गयी थी।

चतुर्भुज सिंह का सपना था कि उनके चारों बच्चे अपने जीवन में 'सक्सेसफुल' आदमी बने, सो तीन को तो डाक्टर, इंजीनियर और प्रशासनिक अधिकारी बना ही दिया था उन्होंने और छोटे लड़के से अपने विरासत को बचाने के लिए प्रोफेसर बनाने की इच्छा मन में पाल रखी थी, पर उसके अंदर प्रोफेसर बनने का सब गुण रहे तब न!... बल्कि सब गुण की बात तो दूर, एक भी गुण रहे तब न। ...वह तो जैसे अपने नाम को सार्थक करने के चक्कर में ही लगा था। पढ़ाई छोड़कर उसने हरेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। चतुर्भुज सिंह को समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने बेटे के जीवन को कैसे संवारे। उसे प्रोफेसर कैसे बनाये। इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए तो भेज नहीं सकते थे, क्योंकि उसकी गणित सही नहीं थी, डाक्टरी तो पढ़वा नहीं सकते थे, क्योंकि उसका विज्ञान सही नहीं था और प्रशासनिक पद हेतु तैयारी नहीं करवा सकते थे क्योंकि उसमें में लगभग सभी विषयों में पारंगतता हासिल करनी होती है, पर ये जनाब तो इन विषयों के अलावे किसी विशेष विषय अर्थात् लफंगई में पारंगत हो रहे थे।

पिता तो परेशान थे ही, अब उनके बड़े भाई लोग भी उसके भविष्य को लेकर परेशान रहने लगे थे। परेशानी की वजह उनके कोई सकारात्मक मंशा तो थी नहीं, बल्कि एक धृणित मंशा थी कि कोई उन्हें नल्ले–नकारे का भाई कहकर बेईज्जत न कर दे। सच में, आदमी के जीवन में एक बार ऐसा भी समय आता है, जब उसे अपनों से ज्यादा चिंता अपनी खोखली ईज्जत से होने लगती है।

...और फिर चारों पिता–पुत्र लग गये थे उस नालायक, निठल्ले को प्रोफेसर बनाने में।

एक दिन तंग होकर तीनों भाई राम सिंह, भरत सिंह और लक्ष्मण सिंह अपने प्रोफेसर पिता चतुर्भुज सिंह के पास आ धमके थे। गुस्से में बड़ा लड़का राम सिंह बोला था, 'आपको तो अपने इज्जत की कोई परवाह तो है नहीं, पर हम सबको तो अपनी इज्जत की परवाह है। शत्रुध्न नल्ला–नकारा बनकर आवारागर्दी करता फिरता है। आपकी इज्जत में कालिख पोत रहा है, आपको पता है कि नहीं। दिन भर खाली ताश–जुआ में समय बिताते रहता है।'

इस पर तो चतुर्भुज सिंह उखड़ ही गये थे, 'तो क्या करूं मैं ? तुम सब तो मेरे ही पुत्र हो। तुम सब कैसे काबिल बने। अब एक लड़का नालायक निकल ही गया तो हम क्या करें ?'

'हम क्या करें, ऐसे कहने से काम नहीं चलने वाला है। कुछ तो करना ही होगा पिताजी।' मंझला लड़का भरत सिंह टोका था।

'अब हमी सबकुछ करें, तुम सब क्यों नहीं करते उसके लिए। उसे समझा–बुझा तो सकते हो न ?" चतुर्भुज सिंह पुनः गुस्साते हुए बोले थे।

'हम लोगों के समझाने से तो रहा वह। अगर समझना होता तो अब तक समझ गया होता। अब हमी लोगों को कुछ करना होगा?' संझला लड़का लक्ष्मण सिंह बोल उठा था।

'क्या करना होगा?' पुनः राम सिंह चौंकते हुए पूछ बैठा।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'भैया मेरे दिमाग में एक तरकीब सूझ रही है, अगर सहमत हो तो मामला सुलझ सकता है।' पुनः लक्ष्मण सिंह बोला था।

'बताओं न!... हम सब विचार करेंगे।' भरत सिंह आशान्वित होता हुआ बोल उठा थ।।

'बाबूजी की प्रोफेसरी कब काम आयेगी। हम सब कोई को पता है कि शत्रुध्न पिताजी के बदौलत ठेल–ढकेल कर बी.ए. पास हो ही गया है। उसे उसी तरह एम.ए. भी करवा दीजिए। विश्वविद्यालय में परीक्षा नियंत्रक से लेकर कुलपति तक सबसे तो पिताजी के अच्छे टर्म हैं ही। फिर लाख–दो लाख देकर किसी के अंदर पीएच.डी. करवा दीजिएगा। ...फिर हमारा टर्म भी तो ऊपर के लोगों तक है ही, वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को कुछ खिला–पिलाकर काम निकलवाया ही जा सकता है।'

लक्ष्मण सिंह की इस तरकीब से तो जैसे सभी की बाहें खिल उठी थीं। फिर चहकते हुए चतुर्भुज सिंह भी बीच में बोल उठे थे, '... और हाँ, इसका कोई कम्पटीशन एक्जाम भी नहीं होता, डायरेक्ट इंटरव्यू होता है।... और इंटरव्यू में तो हमारे परिचित लोग ही होंगे।.. .फिर जब उनको पता चलेगा कि शत्रुघ्न मेरा बेटा है तो कोई कम नंबर तो दे ही नहीं सकता। सेलेक्सन तो पक्का हो जायेगा।'

...और तब से शत्रुघ्न सिंह को प्रोफेसर शत्रुघ्न सिंह बनाने की कोशिश में लग गये थे चतुर्भुज सिंह। अपने इमानदारी को ताख में रखकर व पद और प्रतिष्ठा का भरपूर फायदा उठाकर अपने सुपुत्र को भूगोल से एम.ए. पास करवा दिये, वह भी डिस्टिंग्शन मार्क्स से। ...फिर अपने अधिनस्थ और सहकर्मी प्रोफेसर रामौतार पाण्डेय के अंदर लाख रुपया देकर पीएच.डी. का रजिस्ट्रेशन भी करवा दिये। फिर कुलपति और परीक्षा नियंत्रक से मिलकर दो–ढाई साल में ही किसी दूसरे के थीसिस के लेकर शीर्षक नाम आदि बदलवा कर पीएच.डी. अवार्ड भी करवा दिये। वैसे तो विश्वविद्यालय से पीएच.डी. करने वाले अन्य अभ्यर्थियों को कम से कम तो पाँच साल तो अवश्य ही चक्कर काटने पड़ते थे और कुछ तो पीएच.डी. के चक्कर में परेशान होकर इस धरती को छोड़कर बाकी का शोध–कार्य को पूर्ण करने के लिए स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाते थे; मगर ऐसा इनके साथ नहीं हुआ था, प्रोफेसर सुपुत्र जो ठहरे थे।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जितने भी अभ्यर्थियों का चयन हुआ था वे सभी, या तो प्रोफेसर, कुलपति, आई.ए.एस., आई.पी.एस. सुपुत्र थे या फिर विधायक और सांसदों के परिवार वाले। जन साधारण वर्ग से किसी भी अभ्यर्थी का चयन नहीं हुआ था।

अब तो शत्रुध्न सिंह के नाम के आगे डॉ. भी लगना शुरू हो गया था।... कुछ ही दिनों में वह अपने दोस्तों के बीच 'डॉक्टर साहब' के नाम से पॉपुलर हो गया था। लोगों के मुँह से डॉक्टर शब्द को सुनकर तो उसका सीना और चौड़ा हो जाता था। जैसे डाक्टरी की उपाधि अपने मिहनत के बदौलत ही हासिल की हो। चतुर्भुज सिंह का अब इंतजार भी खत्म होने वाला था। वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग का विज्ञापन निकला। भूगोल विषय में भी 25 रिक्त पदों पर आवेदन आमंत्रित किये गये थे। चतुर्भुज सिंह ने भी अपने बेटे के नाम पर आवेदन आयोग को प्रेषित कर दिया था। ...और फिर चारों पिता–पुत्र लग गये थे उस नालायक, निठल्ले को प्रोफेसर बनाने में। लक्ष्मण सिंह ने अपना हाथ थोड़ा लम्बा किया। वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को मुंहमांगा पैसा देकर लौट आये थे, फिर इंटरव्यू लेने वाले प्रोफेसरों से चतुर्भुज सिंह ने अपनी सांठ–गांठ स्थापित कर ही ली थी। चतुर्भुज सिंह के छोटे साहबजादे शत्रुध्न सिंह का इंटरव्यू भी हुआ। इंटरव्यू लेने वाले विशेषज्ञ तो चतुर्भुज सिंह के परिचित ही थे, अतः उन्होंने इंटरव्यू के नाम पर सिर्फ हाल–चाल पूछ कर छोड़ दिया था।

कुछ ही दिनों के बाद आयोग के परिणाम घोषित हुए। डॉ. शत्रुध्न सिंह भूगोल विषय के टॉपर अभ्यर्थी थे। ...फिर उनकी पोस्टिंग भी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर भूगोल विभाग में हो गयी थी, जहाँ पर पढ़ाई के साथ–साथ शोध–कार्य को सर्वाधिक तवज्जों दिया जाता है। ...अब शत्रुध्न सिंह उक्त विभाग में एम.ए. के बच्चों को पढ़ायेंगे और शोधार्थियों को पीएच.डी. करवायेंगे। अपने छोटे बेटे और छोटे भाई की इस अपार सफलता पर बहुत खुश थे चतुर्भुज सिंह और उनके सभी लड़के; उनकी इज्जत और प्रतिष्ठा में चार चाँद जो लग

गये थे। पर ऐसी प्रतिष्ठा बहुत दिनों तक नहीं रह पायी थी। अगले ही वर्ष कुछ काबिल अभ्यर्थी ने जिन्होंने उक्त नियुक्ति पर आपत्ति जता दी थी, वे न्यायालय की शरण में चले गये थे। न्यायालय ने भी इस पर त्वरित संज्ञान लिया था। नियुक्ति की सी.बी.आई. जाँच शुरू करवा दी थी। वजह यह थी कि जितने भी अभ्यर्थियों का चयन हुआ था वे सभी, या तो प्रोफेसर, कुलपति, आई.ए.एस., आई.पी.एस. सुपुत्र थे या फिर विधायक और सांसदों के परिवार वाले। जन साधारण वर्ग से किसी भी अभ्यर्थी का चयन नहीं हुआ था। सो चयनित अभ्यर्थियों से ज्यादा योग्यता रखने वाले अभ्यर्थियों की आँखों में उनका चुभना स्वाभाविक ही था।

इधर प्राध्यापकों एवं एम.ए. के छात्रों ने भी शत्रुघ्न सिंह के खिलाफ मोर्चा खोल रखा था। छात्रों में अपने नये शिक्षक के रवैये के प्रति जबरदस्त रोस था। शत्रुघ्न सिंह अपने आदत से लाचार तो थे ही, अध्ययन—अध्यापन को छोड़कर उनमें सब गुण तो पहले से ही विद्यमान थे। परमानेंट नौकरी मिलने के पश्चात तो उनके पूर्व की गलत आदतें में चहुंमुखी वृद्धि हुई थी। पहले तो सिर्फ घर वाले परेशान थे, परंतु अब तो विभाग के अन्य प्राध्यापक, कर्मचारी और छात्र—छात्रायें भी परेशान होने लगे थे। पढ़ाने—लिखाने में तो साढ़े बाइस थे ही, और तो और व्यवहार में भी किसी भी तरह परिवर्तन नहीं हुआ था। आये दिन कभी विभागाध्यक्ष से बदतमीजी कर लेते, तो कभी अपने वरीय शिक्षकों से गाली—गलौज भी। उनके इस व्यवहार से आजिज आकर विद्यार्थियों ने कुलपति से शिकायत तक कर दी थी। सहकर्मी प्राध्यापकगण भी सामुहिक आवेदन दे आये थे, कि या तो हम सभी का स्थानांतरण कहीं अन्यत्र कर दिया जाय या फिर शत्रुध्न सिंह तबादला अन्यत्र कर दिया जाय।

प्रारंभ में तो कुलपति ने भी काफी एक्शन लिया। बुलाकर डॉटा—डपटा, कई बार 'कारण बताओ' नोटिस भी जारी हुआ; पर इन सबसे से जनाब को क्या फर्क पड़ने वाला था। जिस इमारत की नींव ही कच्चे ईंटों से बनी हो उसपर गगनचुम्बी इमारत का सपना देखना ही बेकार है। इनकी कारगुजारियों की भनक चतुर्भुज सिंह और उनके तीनों सुपुत्रों को लग गयी थी। उन लोगों ने भी उन्हें काफी समझाने—बुझाने का प्रयास किया पर वही ढाक के तीन पात। तंग आकर चतुर्भुज सिंह ने यहाँ तक कह डाला था, 'देखों, शत्रुध्न!

अगर तुम अपनी आदत में सुधार नहीं लाये, तो इसके जिम्मेवार तुम खुद ही होगे। बहुत ही मुश्किल से पैसा और पैरवी के बदौलत हमलोगों ने तुम्हें प्रोफेसर बनवाया है। फिर भी इतने बड़े सम्मानित पद को अगर तुम संभाल नहीं सके, तो तुम्हारा कुछ भी नहीं होगा। ...और खबरदार, जो हाथ पसारने हमलोगों के सामने आये।'

पर इससे क्या फर्क पड़ने वाला था भला, शत्रुध्न सिंह को। वह तो सिर्फ शराब–शबाब और कबाब में मस्त रहने वाला आदमी था। उसने अपने पिताजी और भाइयों की सलाहों को एक सिरे से खारिज कर दिया था। वैसे भी जब से वृहद प्रदेश, बंग प्रदेश के अलग होकर नया राज्य बना था, तब से सरकारी नौकरियों में धनाढ्य और सफेदपोश लोगों का एकाधिकार स्थापित हो गया था। चाहे वह प्रशासनिक भर्तियाँ हो, कर्मचारियों की भर्तियाँ हो, या फिर प्राध्यापकों की भर्तियाँ ही क्यों न हो। रिक्त पदों का विज्ञापन निकलते हीं खरीद–फरोख्त का धंधा शुरू हो जाता था। योग्यता को ताख में रखकर पैसा और पैरवी के बदौलत नौकरियाँ अर्जित कर ली जाती थी। इस तरह से राज्य में घोर अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गयी थी। इसलिए जनसाधारण के आंदोलनों के प्रचण्ड स्वरूप को देखते हुए और इन अनियमितताओं के मद्देनजर सी.बी.आई. जाँच शुरू हो गयी थी। फलतः दूध का दूध और पानी का पानी होना सुनिश्चित हो गया था।

वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सचिव लपेटे में आ चुके थे। उन्हें न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुना दी गयी थी। कुछ अधिकारी खुद ही नजरबंद हो गये थे। इस प्रक्रिया में व्याख्याता नियुक्ति के सम्पूर्ण विज्ञापन को ही रद्द कर दिया गया। फलतः चतुर्भुज सिंह के महान सुपुत्र की नौकरी भी चली गयी थी। पैसों, पैरवी और अनीति के बदौलत बनायी खोखली इज्जत राई की पर्वत की भांति भरभराकर गिर चुकी थी। प्रो. चतुर्भुज सिंह इस सदमें को बर्दास्त नहीं कर पाये थे, परिणामस्वरूप ब्रेन स्ट्रोक तथा लकवा के शिकार हो गये और अपनी मस्तिष्कीय सक्रियता और शारीरिक क्षमता को पूर्ण रूप से गंवाकर एकांतवास की ओर गमन कर गये थे।

❖

कहानी

तेरे शहर में...

खेमकरण 'सोमन'
रूद्रपुर, जिला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड–263153
khemkaransoman07@gmail.com

धर्मदेव बहुत समय तक सोचता रहा कि कहीं देखा है उन्हें! लेकिन कहाँ? इसी ख्याल में वह अपने हॉस्टल तक पहुँच गया। हॉस्टल पहुँचते ही उसे ध्यान आया, अरे! ये तो आरिफ चाचा हैं! फिर वह तुरन्त बाजार की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ जाकर ध्यान से देखा– हाँ! ये आरिफ चाचा ही हैं, जो अब बहुत दुबले–पतले दिख रहे थे। चेहरे पर भी पहले जैसी तरो–ताजगी नहीं रही और कपड़े भी बहुत सामान्य। धर्मदेव समझ गया आरिफ चाचा का जीवन आज भी तितर–बितर है, तो इसके पीछे अतीत में घटी एक घटना है, जिस कारण वे अपने आपको पहले जैसा नहीं बना सके। स्थिति अब पूरी तरह बदल चुकी थी। धर्मदेव को खड़े–खड़े कुछ समय बीत गया। अपनी ओर ताकते देख आरिफ चाचा ने उसे अपने पास बुला लिया। धर्मदेव ने सिर झुकाकर आदाब कहा।

"बेटा, क्या सेवा करूँ?" आरिफ चाचा ने धर्मदेव के आदाब का जबाव देते हुए कहा।

धर्मदेव समझ गया कि आरिफ चाचा उसे पहचान नहीं पाए हैं। जैसे कुछ देर पहले तक वह भी उन्हें पहचान नहीं पाया था।

दोनों एक–दूसरे को दस–बारह वर्षों बाद भी देख रहे थे। तब धर्मदेव आठवीं कक्षा का छात्र था। अब तो वह जवान हो गया था। चेहरे पर दाढ़ी–मूँछे आ गईं और शरीर की बनावट में भी अन्तर आ गया। फिर ऊपर से यह अजनबी शहर! तो कैसे पहचानते आरिफ चाचा उसे।

''आरिफ चाचा....ये मैं!'' धर्मदेव ने मुस्कुराते हुए कहा–''मैं धर्मदेव! आपके पुराने शहर गदरपुर का निवासी। आपके दोस्त जनार्दन श्रीवास्तव जी का लड़का!''

''अरे धर्मदेव तुम!'' आरिफ चाचा एक पल चौंके! फिर खुशी से धर्मदेव का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहने लगे–''तू तो अब बड़ा हो गया है यार। तभी तो मैं सोचूँ कि ये कौन है जो इतने प्यार से मुझे देख रहा है। आ बेटे, आ। यहाँ बैठ जा।'' आरिफ चाचा ने उसे एक स्टूल पर बिठा दिया।

फिर बातों का सिलसिला चल निकला। घर परिवार की बातें। पढ़ाई–लिखाई की बातें। दुनिया–जहान की बातें। इधर की बातें। उधर की बातें। फिर सारी बातें खत्म भी हो गईं और दोनों के बीच चुप्पी छा गई! परन्तु कुछ बातें अभी बाकी थीं, जिन्हें धर्मदेव जानना चाहता था। इसके लिए उसे चुप्पी तोड़ने की आवश्यकता थी।

''आरिफ चाचा'' धर्मदेव ने कहा–''मुझे उस घटना के बारे में बताइए! क्या वो मामला आपके और बलिया के बीच कुछ सुलझा? कुछ बातें तो मुझे मालूम हैं लेकिन मैं सब कुछ आपसे जानना चाहता हूँ, और इमरान, इमरान कैसा है?''

इमरान को याद कर आरिफ चाचा की आँखों से आँसू छलक पड़े। उन्होंने अपनी आँखें बंद कर ली। तभी चाय वाला दो कप चाय दे गया। आरिफ चाचा ने अपने आँसुओं को पोंछते हुए चाय की तरफ इशारा किया। धर्मदेव ने एक कप चाय उठा ली और एक कप आरिफ चाचा को थमा दी।

अब तो बहुत दिन हो गए थे, उस घटना को। लगभग दस वर्ष! आरिफ चाचा इस बिन बुलाई लड़ाई को भूकंप का नाम देते थे, जिसने उनके जीवन को तहस–नहस कर दिया था। घटना को याद कर वे दुख के गहरे सागर में डूबने लगे। न चाहते हुए भी आज उन्होंने अतीत में कदम रख दिया। फिर भला अतीत को कोई भूलता है क्या? तो आरिफ चाचा कैसे भूल जाते?

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पहली बार जब उन्होंने गदरपुर जैसे छोटे शहर में कदम रखा तो पूरी तरह अजनबी थे। लेकिन ज्यादा दिनों तक अजनबी–अनजान बनकर रह नहीं सके। जल्दी ही शहर सहित आस–पास गाँव के लोग उनको जानने–पहचानने और समझने लगे। भीड़ ज्यादातर उन्हीं की दुकान पर होती। वे मंझे हुए बार्बर थे, इसलिए लोगों को उनका काम पसंद आ रहा था। उन्होंने अपनी दुकान का नाम रखा–'स्माइल हेयर ड्रेसर'। यहीं से धर्मदेव और आरिफ चाचा के बेटे इमरान की दोस्ती शुरू हुई। बाद में वे दोनों अच्छे सहपाठी भी बने। आरिफ चाचा की दुकान से थोड़ी दूरी पर ही धर्मदेव का घर था।

आरिफ चाचा का व्यवहार हमेशा ही दोस्ताना और दिलखुश रहा। उनका काम भी तो कुछ इसी प्रकार यानी सभी लोगों से मिलने–जुलने का था। माता–पिता जब अपने छोटे–छोटे बच्चों को बाल कटवाने लाते तो बच्चे कैंची देखकर रोने–चीखने लगते। आरिफ चाचा बच्चों से दोस्ती करने की कोशिश करते और उनको कविताएँ सुनाते।

कविताएँ सुनकर भी यदि बच्चे नहीं मानते, तो पता नहीं आरिफ चाचा उनके कानों में क्या कहते कि वे हंसी–खुशी बाल कटवाने लग जाते। आरिफ चाचा बच्चों के कानों में क्या कहते? ये टैकनिक, उन्होंने कभी भी किसी को नहीं बताई।

'स्माइल हेयर ड्रेसर' खुलने से आरिफ चाचा की अच्छी कमाई होने लगी। कभी–कभार विशेष अवसरों पर बढ़ भी जाती थी। ग्राहकों के बढ़ने के कारण उन्होंने दो लड़के भी रख लिए थे। काम कभी ज्यादा हुआ तो इमरान भी स्कूल टाइम के बाद आ जाया करता था। फिर वह दिन भी आया जिसकी टीस आज भी आरिफ चाचा को कुरेद रही है। रात के आठ बज रहे थे। टीवी पर भारत और पाकिस्तान का एक दिवसीय मैच चल रहा था। मैच देखकर कोई भी यह अनुमान लगा सकता था कि भारत की हार आज निश्चित है। दुकान में छह–सात जो भी लोग बैठे थे, उन सबकी नजरें टीवी पर चिपकी हुई थीं। तभी हट्टे–कट्टे एक आदमी ने दुकान में प्रवेश किया। उसे देखकर साफ–साफ लग रहा था कि ये धन–बल के गरूर में नहाया हुआ आदमी है। उसकी नजरें भी टीवी पर चिपक गईं। ऐसा लग रहा था कि भारत की दयनीय स्थिति देखकर वह बहुत परेशान है।

“क्या कहते हैं आरिफ भाई ?” दुकान में बैठे एक परिचित ने आरिफ चाचा से पूछा–“भारत का कुछ होगा कि नहीं ?”

“जनाबे–हिन्द! कुछ भी नहीं हो सकता?” आरिफ चाचा ने कहा–“भारत की दयनीय स्थिति देखकर कहीं से भी नहीं लगता है कि यह जीतेगा? पहले बैंटिंग खराब की, अब बॉलिंग और फिल्डिंग भी खराब कर रहे हैं। कैच भी छोड़ रहे हैं। इसलिए आज बहुत मुश्किल है भारत की जीत!”

आरिफ चाचा की बातें सुनकर उस आदमी ने अब आरिफ चाचा की ओर देखा और मुँह बनाकर बोला–“तुम मुसलमान लोग रहते हो भारत में और गुण गाते हो पाकिस्तान के! कभी भारत की जीत बारें में भी सोचा है ?”

“भाई साहब! इसमें सोचना क्या है?” आरिफ चाचा ने उस आदमी से कहा– “जो कुछ भी है आपके सामने टीवी पर साफ–साफ है। मैं कह दूँ कि भारत जीत जाएगा तो कहने भर से क्या भारत जीत जाएगा। लेकिन आपका इस तरह कहना कि मैं पाकिस्तान का पक्ष ले रहा हूँ, ठीक नहीं। भाई साहब, मैं भारत का सच्चा पुत्र....”

अचानक उस आदमी को क्या हुआ कि उसने आरिफ चाचा की बात पूरी होने से पहले ही उन्हें अपनी ओर खींच लिया और लगा पीटने। गुस्से में काँपकर बोला–“हरामखोर तुम....!” आरिफ चाचा एकाएक समझ न सके कि यह क्या हुआ? वह आदमी गंदी–गंदी गालियाँ देकर आरिफ चाचा को पीटने में लगा हुआ था। दोनों गुत्थम गुत्था हो गए। फिर आरिफ चाचा का उस्तरा भी चल गया।

उस्तरे का वार वह आदमी सहन न कर सका। चीखते–चिल्लाते हुए वह वहीं सिर पकड़ कर गिर पड़ा। फर्श पर खून ही खून फैल गया। आरिफ चाचा ने तब घबराते हुए अपने लड़कों से कहा–“तौफीक–रफीक! तुरन्त भागो यहाँ से। रूकना ठीक नहीं।”

जो लोग दुकान में बैठे थे, उन्होंने भी अपने घर की राह पकड़ ली। सब कुछ बहुत तेजी से घटा। चीख–पुकार सुनकर और सारा मंजर समझकर दूसरी दुकान पर खड़े तीन–चार लोग आरिफ चाचा के पीछे लपके। लेकिन तब तक वे अंधेरी गलियों मे गायब हो चुके थे। उनको अंधेरे के अतिरिक्त कुछ भी न मिला।

उस्तरे के वार से घायल होने वाले आदमी का नाम बलिया था, जिसे आरिफ चाचा अच्छी तरह जानते थे। वह कुछ गुण्डा मिजाज

का आदमी था और ब्याज पर पैसे लेने–देने का काम भी करता था। रात नौ–साढ़े नौ बजे तक ये खबर आसपास फैल गई कि आरिफ चाचा ने बलिया को जान से मारने की कोशिश की है। लोग तरह–तरह की बातें बना रहे थे। अन्दर ही अन्दर कुछ लोग ये भी कहते कि जब भी भारत–पाकिस्तान का मैच होता है तो बलिया किसी को पीटता है या किसी से पिटता है। बहरहाल! बलिया के आदमी लगातार आरिफ चाचा को ढूंढ़ रहे थे। वे लोग धर्मदेव के घर भी गए परन्तु वहाँ से भी निराश होकर लौटे। वे कभी नहीं जान पाए कि आरिफ चाचा, तौफीक और रफीक उन्हीं के घर में छुपे हुए हैं। घटना के समय इमरान यहाँ नहीं था।

आरिफ चाचा काफी डरे हुए थे, अतः वे जल्दी–जल्दी यहाँ से निकलना चाहते थे लेकिन जनार्दन श्रीवास्तव ने उन्हें रोका और कहा–''अभी जहाँ भी जाएँगे, तुरन्त पकड़े जाएँगे। इस समय सिर पर खतरा है। इसलिए आप तीनों तड़के सुबह अवसर देखकर निकलिए।''

कुछ दिनों बाद जब बलिया की हालत में सुधार हुआ तो वह अपने आदमियों के साथ आया। दुकान लड़ाई वाले दिन से ही बंद थी। बलिया ने सबसे पहले दुकान के दोनों ताले तोड़े। शटर भी तोड़ डाली। बंदूक की बट से सारे शीशे भी तोड़ डाले। एक हँसती–खेलती दुकान चंद मिनटों में ही तहस–नहस हो गई। बलिया के इस काम को देखने के लिए एक अच्छी खासी भीड़ भी जमा हो चुकी थी। लेकिन भीड़ क्या बोलती? बस तमाशबीन बनकर रह गई। तमाशबीन बनकर तो दुकान के असली मालिक भी रह गए थे। अंत में 'स्माइल हेयर ड्रेसर' लिखे बोर्ड के छह टुकडे करते हुए बलिया ने फिल्मी अंदाज में धमकी दी कि आरिफ कहीं भी रहे, बच नहीं पाएगा। बलिया के साथ काफी लोग थे, जो बलिया के काम आने के लिए छटपटाए जा रहे थे।

इधर भी ऐसा नहीं कि आरिफ चाचा के साथ कोई नहीं था। उनके साथ वे लोग पूरी मजबूती के साथ खड़े थे जो घटना की रात दुकान में क्रिकेट मैच देख रहे थे। जनार्दन श्रीवास्तव तो उनके सुख–दुख में थे ही। इस प्रकार बहुत से लोग आरिफ चाचा की ओर थे, जो अच्छी तरह उनके व्यवहार से परिचित थे। इन लोगों ने मिलकर बलिया के परिवार वालों को बताया कि गलती किसकी थी? और किस तरह से बात आगे बढ़ी ? उस समय तक शहर में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिन्ट मीडिया की आवाजाही लगभग न के बराबर थी। जो अखबार दिल्ली से यहाँ पहुँचता था वो भी दूसरे दिन

लगभग ग्यारह–बारह बजे। और सिर्फ अखबार ही पहुँचता था, कोई पत्रकार नहीं। अतः इस घटना को ज्यादा हवा नहीं लगी। अन्यथा वह घटना यदि आज के समय घट गई होती तो ये इलैक्ट्रोनिक मीडिया और प्रिन्ट मीडिया, हिन्दू–मुसलमानों में दंगा करवा कर ही मानते। बहरहाल...इस लड़ाई के कारण आरिफ चाचा ने घर से निकलना बंद कर दिया। उनकी जमा पूँजी धीरे–धीरे खत्म होने लगी। चिन्ताग्रस्त दिन–रात वे यही सोचते थे कि जैसे–तैसे ये लड़ाई खत्म हो। वे 'स्माइल हेयर ड्रेसर' को फिर से नया जीवन दें। अपने लिए, अपने परिवार के लिए।

दूसरी ओर बलिया के दोनों भाईयों ने भी यही फैसला लिया था कि ये कानूनी लड़ाई अब बहुत लम्बी हो गई है, अतः दोनों पक्षों के आपसी तालमेल से लड़ाई को यहीं विराम दिया जाए। इसलिए बलिया के दोनों भाईयों ने कम्प्रोमाइज करवाना ही बेहतर समझा, लेकिन बलिया न माना। इस तरह कानूनी लड़ाई चलती रही। दोनों पक्षों के पैसे खर्च होते रहे। इसका प्रभाव बलिया जैसे धनाढ्य व्यक्ति पर ज्यादा तो नहीं पड़ा लेकिन आरिफ चाचा जैसे व्यक्ति पर जरूर पड़ा। उनकी हालत जर्जर होने लगी। चिन्ता के कारण अक्सर बीमार भी रहने लगे थे।

''धर्मदेव बेटे!'' आरिफ चाचा कह रहे थे–''और उसके बाद तो मैं और मेरे परिवार के लोग अच्छा खाने–पीने और ओढ़ने को तरस गए। मेरे अपने ही मुझे कोसने लगे। कहने लगे परिवार के वास्ते कभी–कभी मार भी खा लेना चाहिए। अब क्या कहूँ। इस लड़ाई ने, इस कानूनी दाव–पेंच ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा। भला हो आपके पिता जनार्दन जी का और बलिया के दोनों भाईयों का कि जैसे–तैसे उन्होंने मामला सुलझाया और मुझे इस कानूनी लड़ाई से मुक्ति दिलवायी। परन्तु मैं जानता था कि ये लड़ाई कानूनी रूप से खत्म हो गई है लेकिन व्यक्तिगत रूप से नहीं। क्योंकि बलिया, काले साँप की तरह फुँफकार कर कभी भी मुझे डस सकता था, या मुझ पर हमला कर सकता था। यही सोचकर मैंने गदरपुर में दुकान खोलने का विचार त्याग दिया। और हमेशा के लिए अपने शहर चला गया। लेकिन मेरा शहर भी मुझे हरा–भरा न कर सका, तो आजकल इस शहर में आ गया हूँ।''

धर्मदेव ने इमरान के बारे में जानना चाहा तो आरिफ चाचा फफक–फफक कर रो पड़े। कुछ देर शांत रहने के बाद बोले–''बेटा, बर्बादी के बाद, एक बड़ी खुशी अल्लाह ने मुझे दी। मेरा इमरान फौज

में भर्ती हो गया। ये देखकर मुझ बूढ़े बाप की आँखों में चमक उभरी थी कि पोस्टिंग के ठीक सात महीनों बाद मेरे इमरान की लाश मेरे घर आ गई। वह आतंकवादियों के आतंक का निशाना बन गया। अब आगे क्या कहूँ ?''

धर्मदेव कुछ बोल नहीं पा पाया। क्या बोले? वातावरण में फिर खामोशी छा गई। आरिफ चाचा ने आँखों से आँसू पोंछते हुए कहा–''बलिया जैसे जो लोग सोचते हैं कि मैं मुसलमान हूँ और पाकिस्तान का पक्ष लेता हूँ! तो वह मुझे बताए कि फिर क्यों मेरा इमरान भारत देश के लिए मरा? और इसके बदले में मुझे क्या मिला? या भविष्य में क्या मिलेगा? क्या सच बोलने का भी डर है! वह सच जिसके कारण आज मैं इस अवस्था में हूँ। तभी समझ पाया कि विभिन्न प्रकार के रंगों को पहचाना तो जा सकता है किन्तु जीवन के रंगों की पहचान बहुत मुश्किल है। कम से कम मेरे लिए तो बहुत मुश्किल है।''

आरिफ चाचा की बात सुनकर धर्मदेव ने एक गहरी साँस ली। उनकी दयनीय स्थिति देखकर सोचने लगा, अब इस बूढ़े बाप की गुजर–बसर कैसे होती होगी? धर्मदेव ने उनकी पहले की जिन्दगी देखी थी। कहाँ पहले सुन्दर–सुन्दर पहनावा। ठाठ–बाट, खाने–पीने की कोई कमी नहीं। बिलकुल क्लीन शेव्ड और कहाँ अब... लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ, गुरबत के दिन!

धर्मदेव ने महसूस किया कि वह यहाँ पिछले तीन घण्टों से है। इस बीच आरिफ चाचा के पास केवल एक ग्राहक आया, जिसे भी उन्होंने, उसके कारण सामने की दुकान पर भेज दिया था। धर्मदेव सोचने लगा कि इस शहर में जब इतने बड़े–बड़े स्टाइलिश सैलून हैं, तो चकाचौंध के इस युग में इस फुटपाथ पर कोई भूलवश ही आता होगा। बाजार में चहल–पहल अब बढ़ गई थी। शाम के छह बजने वाले थे। धर्मदेव ने आरिफ चाचा से अब विदा लेनी चाही। आरिफ चाचा ने बस इतना ही कहा–''बाजार आना तो मिलते रहना। और अपने शहर जाओ तो श्रीवास्तव भाई को मेरा नमस्कार कहना। खुदा खैर करे।''

अन्दर से उदास धर्मदेव अपने हॉस्टल की ओर चल पड़ा। उसकी आँखों में इस समय दो लोगों का चेहरा समाया हुआ था। एक इमरान का और दूसरा, आरिफ चाचा का।

❖

कहानी

लखनऊ में एक मौत

दिलीप कुमार
मालती कुंज कॉलोनी, आनंद बाग, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश 271201

''माघ का महीना। समूचे उत्तर भारत में प्राणलेवा शीतलहरी, कहर बरपा रही थी। चरिंद–परिंद सभी की जिन्दगियां कुदरत के इस कहर से बेहाल थीं। लगता था कि लखनऊ शहर की रूमानियत और हलचल को गोमती से उठा कोहरा धीरे–धीरे लील रहा था। कई दिनों से सूर्य के दर्शन नहीं हुये थे, सो वक्त का अंदाजा लगाना मुश्किल हो रहा था। क्योंकि धुंध और कोहरा ही चहुं ओर फैला था। गालिबन बाद दोपहर का वक्त रहा होगा। हालांकि अंधेरा अभी हुआ न था मगर फिर भी लोगों ने बिजली–बत्ती से घरों को रोशन कर दिया था। हाड़ कंपा देने वाली ठंड और बोझिल इंतजार ने उन तीनों का मन खट्टा कर दिया था। मूने, पंइया और बरसाती बड़ी बेचौनी से जोखन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जो केलो की अन्त्येष्टि का सामान लेकर आने वाला था। वैसे वे सब साथ के ही पियक्कड़ थे, मगर केलो, जोखन का खास हमप्याला था।

केलो काफी दिनों से जोखन को उधार दारू पिला रहा था। गाहे–ब–गाहे केलो नगदी से भी जोखन की मदद किया करता था। मगर नगदी के मुकाबले दारू की उधारी बहुत ज्यादा थी। ज्यादातर

उधारियाँ जुबानी जमानत की ही थी जो केलो ने कल्लो मौसी को दी थी कि जोखन अगर दारू के कर्जे न चुका पाया, तो उसके कर्जे केलो चुकायेगा। केलो खुद को पहाड़ी राजपूत बताता था। जो जमानत के लिए अपनी मूंछो को ही पर्याप्त बताता था। तब कच्ची शराब बनाने और बेचने वाली कल्लो मौसी उसकी बड़ी–बड़ी और बेतरतीब मूंछो को ममतामयी दृष्टि से देखा करती थी, मगर अगले ही क्षण अपनी विधवा बहू कबरी पर केलो की आसक्ति को सोचकर कुद्ध भाव भंगिमायें बना लिया करती थी। मगर तब मन ही मन उसे इस बात की तसल्ली भी हुआ करती थी कि उसके न रह जाने पर कबरी को भूखों न मरना पड़ेगा, भई...... केलो है ना।

मगर केलो ही न रहा। आज उसी दारू की भट्ठी के नजदीक औंधी पड़ी केलो की लाश के समीप कल्लो मौसी अकारण ही अपने आंखो से बहते झर–झर आंसुओं को रोक नहीं पा रही थी। ये गम उधारी के डूब जाने के सबब था या सहारे के खोने की चिंता के जानिब, किसे पता? मौसी कभी केलो की लाश को देखती तो कभी कबरी को। कबरी, न तो केलो की लाश की तरफ देखती थी और न ही मौसी से नजरें मिलाने का साहस कर पा रही थी। वो सिर झुकाये, सिरके को हिला–डुला कर तल्लीनता से मिलाने का असफल प्रयत्न कर रही थी ताकि अगले दिन अच्छी, कच्ची शराब बन सके। हाथ काम पर था, नजरें नीची थी, दिल में रंज था कि कहीं दुख फट न पड़े। विलाप की चहुंओर चुगली हो सकती थी, सफाइयां देनी पड़ सकती थी कि किसी गैर मर्द के निधन पर वैधव्य का विलाप क्यों? वो भी कबरी द्वारा।

जिसे उसका पति कोढ़िन समझता रहा था और सफेदा (ल्यूकोडर्मा) के दाग के कारण पहले उसे चितकबरी कहा करता था जो कि पुकारने की सुविधा हेतु कबरी बन गया। वैसे उसका नाम लक्ष्मी था। उसका पति लल्लन गुजर गया था। करीब अठारह वर्ष पहले, मगर कबरी नाम उसका तभी से पड़ा था। अब तक खुद वो अपना नाम लक्ष्मी भूल चुकी थी। फिर ये दुख उस केलो की खातिर क्यों था, जिसने कि एक गैर–जिम्मेदार जीवन जिया था। खाये–पिये, मस्त...? कबरी को चाहने और उसके असरहीन विरोध के बावजूद

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उसे छूने से इसलिये घबराता था क्योंकि वो सफेदा को कोढ़ ही समझता था, जो कि कबरी को छूने से उसे भी हो सकता था। आखिर वो केलो भी तो इस दारू की ठेकी का एक सामान्य ग्राहक था।

इस दारू की ठेकी पर हर किस्म के पियक्कड़ आते थे। शरीफ, बदमाश, चोर–दगाबाज से लेकर पंडा–पुजारी तक इस सस्ती दारू के तलबगार थे। कुछ यहीं पीते थे कुछ बंधवाकर ले जाते थे। गोमती तट पर बसी इन अनियोजित झुग्गियों में दारू बनाकर बेचना सरकार की नजरों में भले ही अवैध हो, मगर इस समाज में इसे एक कुटीर उद्योग माना जाता था जो कि श्रम एवं पूंजी से संचालित होता था एवं जहां गुणवत्ता की गारण्टी देनी पड़ती थी। अचानक कबरी उठी, मौसी की मनोदशा को भांपते हुये और बगैर उससे कुछ कहे वो घाट की तरफ चल दी। वहां उन तीनों ठिठुरती प्राणियों से उसने संयत स्वर में कहा दृ

''लाश कब तक रोके रहोगे, टेम हो रहा है। मौसी बिगड़ रही है"।

प्रयक्षतः स्वर से रूखाई एवं उकताहट का इम्कान होता था मगर हकीकतन ये एक टीस भरा विलाप था ''जा तन लोग, वा तन जाने"।

वे तीनों अवधी में प्रचलित क्लासिक गालियां जोखन के लिये बकते हुये भट्ठी पर पहुंचे। वे मौसी की शक्ल देखकर ही उसकी नाराजगी जान चुके थे। उन्होंने दो अद्धे (शराब की आधी भरी बोतल) लिये। जिन्हें देते हुये मौसी बड़बड़ाई। मौसी की नाराजगी को कम करने के लिये दुख की इस घड़ी में भी पंइया खींसे निपोर कर बोला–

''माघ की ठंडी है। कलेजा तक ठिठुरा जाता है। मुर्दा पहुंचाने जा रहे हैं। हमें खुद मुर्दा नहीं होना है। लाओ एक–एक गिलास लगा लें। सब इस शीतलहरी से बचे रहेंगे"।

मौसी टली नहीं। वो कुढ़ती, बड़बड़ाती और गरियाती रही। मगर कबरी जान चुकी थी कि बात चली है तो पिये बगैर ये लोग यहां से न हिलेंगे। और अगर ये लोग छिटक गये तो फिर इतने आदमियों को जोड़ना मुहाल हो जायेगा। तो फिर लाश की दुर्गति हो सकती है। जो उसे कतई गवारा न थी। वो मौसी की रजामंदी की

परवाह किये बिना झट से गिलास ले आई। इस बार पीने के साथ खाने के लिये चना या चटनी की फरमाइश न हुई। बेशक उनमें स्वार्थ था मगर मौके की नजाकत भांपते हुये मानवीय संवेदना उनमें भी जागी। अब तक पराया समझकर केलो की लाश को हिकारत से देखने वाले उसके साथियों ने शराब पीते ही उसे अपनेपन से देखना शुरू कर दिया। ये वही शराब है, जिस पर इल्जाम है कि ये इंसान को जानवर बना देती है। मगर यहां पशुता की स्वार्थ सिद्धि तजकर, शराब पाते ही उन पियक्कड़ों में मनुष्यत्व की संवेदनायें जागृत हो गयी थीं।

उन सभी ने थोड़ी–थोड़ी ही पी थी सो नशे का सवाल ही पैदा नहीं होता था। उनकी आंखों से आंसुओ की बूंदे शराब पीने के बाद ही टपकी थीं। ऐसे गमजदा हुये कि मानो पियक्कड़ केलो नहीं, बल्कि उनका कोई सगा, संबंधी गुजर गया हो। जोखन अब तक न आया था। सो इंतजार बेमानी था। जोखन को श्राप देते हुये मूने ने कोई गंदी सी गाली दी, जिसका बरसाती ने समर्थन किया। पंइया ने बात आगे बढ़ाते हुये केलो के मानवता के महान गुणों का वर्णन करने की शुरूआत की ताकि उसकी मृत्यु महत्वपूर्ण बन सके। तब तक मौसी ने उन सभी को डपटा– ''टेम देखो टेम। बतकही बात में"।

मौसी बखूबी जानती थी कि भले ही विद्युत शवदाह गृह में केलो की कर्माही होनी थी, खर्चा तो लगेगा ही। सो पहले से बुलाये गये टेम्पो चालक को मौसी ने सौ का तुड़ा–मुड़ा नोट देते हुये आंखो के इशारे से तत्काल प्रस्थान का आदेश दिया। मौसी ने कबरी को देखा तो कबरी सहम गयी। विधि विरूद्ध होने के बावजूद कबरी घर के अंदर से एक लोटे में गंगा जल ले आयी। भट्ठी से सटे पड़े केलो के हाथों को हटाकर भट्ठी से मृत शरीर की स्पर्शता समाप्त की और केलो के मुंह में गंगाजल डाल दिया। टेम्पो चालक और उन तीनों ने मिलकर जब केलो की अर्थी उठायी तो मौसी फफक–फफककर रो पड़ी। रोते–रोते उन्होंने कबरी से कहा– ''दुल्हिन ठाकुर के पांव छू लेव। बहुत मरजादी पुरूष रहे, बड़ा पुण्य मिलेगा। राम इन्हैं सरग में जगह देय।''

कबरी को दुख जरूर था। मगर स्त्रीत्व के भी अपने तर्क थे। लाज की बंदिशें थीं। सो चार बाहरी पुरूषों के समक्ष किसी गैर मर्द के पांव छूना कबरी को गवारा न हुआ। क्योंकि बात का बतंगड बन सकता था। नियति अपना दांव चल चुकी थी सो बतंगड़ को बात भी न बनने दिया गया। वैसे केलो के घरजमाई बनने में देर ही कितनी थी। प्रभावहीन विरोध के साथ मौन स्वीकृतियां भी थीं। केलो और कबरी उम्र के उस पड़ाव पर थे, जहां शारीरिक आकर्षण गौण हो चले थे। उन्हें एक दूसरे के साथ का पूरा आसरा था, भले ही वे रहते दूर–दूर थे। मौसी भी एक हद तक निश्चिन्त हो चली थीं कि उनके बाद कबरी को भीख मांगकर गुजारा नहीं करना पड़ेगा क्योंकि पचास वर्ष के बाद की असहाय स्त्री इस बस्ती में किसी काम की न रह जाती थी।

टेम्पो वाले की चीख ने उन दोनों महिलाओं की तन्द्रा भंग की और वे वर्तमान में लौट आयी, टेम्पो जा चुका था। बर्फीली हवाओं से बचने के लिये किवाड़ बन्द कर लिये गये। जहां केलो का मृत शरीर पड़ा था उस स्थान को लीप कर नहाने का हुक्म कबरी को मौसी ने दिया। लीपने से पूर्व उस स्थान की मिट्टी को कबरी ने अपने मुंह और मांग पर रगड़ लिया फिर लीपा। बन्द किवाड़ों के पीछे विलाप पर पर्दा न था। वैधव्य के आंसुओं से उसका चेहरा तर हो गया था। वो नहाने गयी तो पानी से धुलने के बजाय झाड़–पोंछकर चेहरे और मांग की मिट्टी को एक कपड़े में बांध लिया। इस मिट्टी की पोटली को संभालकर उन आभूषणों के साथ संदूक में रख दिया, जो उसने लल्लन की विधवा होने के बाद आज तक नहीं पहने थे। आभूषण और मिट्टी की पोटलियां उसके जीवन में आये दो पुरूषों की निशानियां थीं। अबला नारी फूट–फूट कर रोने लगी तो मौसी ने उसे ढाढ़स बंधाया। दोनों बड़ी देर तक आलिंगन बद्ध होकर फूट–फूटकर, बिलख–बिलखकर और हिचकियां लेते हुये रोती रहीं। वे जानती थीं कि इन आंसुओं का बहना मुफीद है, जिन्दा रहने के लिये।

उधर वे तीनों गरियाते–श्रापते, कोसते भैंसाकुण्ड पहुँचे, जिनका केन्द्र बिन्दु जोखन ही था। रास्ते में टेम्पों पर लटककर बैठा होने के कारण ठोकर लगने से बरसाती के पांव में चोट भी लग गयी

थी। सो वो रास्ते भर कलपता–कराहता रहा और केलो को बद्दुआयें भी देता रहा। भैंसाकुण्ड पर भी बहुत भीड़ थी। श्मशान में इतनी बड़ी भीड़ कौतूहल का सबब थी। तमाम आला अफसरान और पुलिस की गारद भी मौजूद थी, लिखा–पढ़ी चल रही थी। बयान न सिर्फ लिये जा रहे थे बल्कि लिखे और रिकार्ड भी किया जा रहे थे। खबरनवीस, टी0वी0 चौनलों के नुमाइंदे, गमजदा परिवार वाले मातम पुर्सी के तमाशबीनों की खासी तादाद मौजूद थी।

दरयाफ्त की गयी कि गुलजारे–श्मशान की वजह क्या है? पता चला कि गोमती नदी के निचले इलाके की कच्ची बस्ती में जहरीली शराब पीने से गुजरी रात कई लोग गुजर गये और अभी भी तमाम लोगों के मरने की उम्मीद है। तमाम लाशें आ चुकी थीं, पता नहीं अभी कितनी और आयेंगी। देर–सबेर हो सकती है इस मुकाम पर फिर पुलिस जॉच हो गयी तो लेने के देने। हम चारों अंदर हो सकते हैं। फिर केलो का पोस्टमार्टम, लाश लावारिस हो जायेगी। क्योंकि सगे वालों की तलाश होगी। मगर इतनी जांच–पड़ताल क्यों? अरे सबकी मौत का मुआवजा जो बँटना है भाई। कहीं गलत आदमी को चेक न मिल जाये तो लेने के देने पड़ जाये। मगर इस सबसे बड़ा खतरा पुलिस की पूछ–तांछ का था, जिससे हर शख्स हर्गिज–हर्गिज बचना चाहता था।

उन्होंने विद्युत चालित शवगृह से पिंड छुड़ाया और वहाँ से चलने को हुये तब तक दूसरे टेम्पों से जोखन उतरता दिखा। वो अंत्येष्टि का सामान्य लिये हुये था। वह कुछ पूछता इससे पहले ही जोखन को खींचकर वे पांचों केलो के मृत शरीर के साथ पुनः टेम्पों में सवार हुये और उन्होंने गोमती के निचले इलाके में बसी एक दूसरी बदनाम बस्ती बसारत पुरवा की तरफ कूच कर दिया। जोखू ने रास्ते में वापसी का सबब पूछा तो उसके तीनों पियक्कड़ मित्रों ने इन्तजार कराने की एवज में उसी अवधी में प्रचलित सारी अति वर्जित गालियाँ दे डाली। इतंजार का डाह निष्पादित करने के पश्चात उन्होंने बताया कि पुलिस के लफड़े से बचने के लिये वे लोग वहाँ से उल्टे पाँव भागे है। बरसाती ने पुनः अपनी चोट के लिये केलो और जोखन को बारी–बारी से कोसा।

अब तक माघ की सर्दी जानलेवा दुश्मन की शक्ल में हाजिर हो चुकी थी। ठंड नसों में उतरती महसूस हो रही थी। कोहरा गोमती नदी के अस्तित्व को झुठला रहा था। धुंए और फाहों की गझिनता इतनी थी कि हाथ को हाथ तक न सूझता था। इसी सर्दी से जूझते हुये उन चारों ने लाश नीचे उतारी, टेम्पो वाला इस बार की किसी अनहोनी की आशंका से बढ़ा हुआ किराया मांगे बिना नौ दो ग्यारह हो गया। मौसम की मार और अनहोनियों से जूझते हुये उन चारों को इम्कान होने लगा था कि आज केलो का दाह संस्कार होना मुश्किल है। मगर कभी–कभार दूसरों की मुसीबतें किसी–किसी के लिये राहत भी बन जाती हैं। सर्दी ने लखनऊ में तमाम जाने ली थीं, सो तीन–चार वहां भी जलने की कतार में थीं। उन्होंने पंडित से बात की। हामी हो गयी। सबकी जेबें टटोली गयीं। सारे खर्चों और वापसी के किराये के अनुमान के बावजूद उनकी जेब में डेढ दो सौ रूपये बच रहे थे। उन सबों को किसी प्रकार की जल्दी न थी। मगर बाकी के लोगों के परिवार वाले ठंड से कांप रहे थे। वे जल्दी–जल्दी को रट लगाये थे और ज्यादा पैसे देने का प्रलोभन भी दे रहे थे। मगर प्रकृति की मार के कारण उस शीतलहर में लाशें बहुत वेग से न जल पा रही थी।

वहाँ मौजूद सभी लोगों के चेहरों पर बेचौनी, अकुलाहट एवं झुंझलाहट थी। इधर ये चारों सर्द हवाओं की मार से पस्त थे। समय था, पैसा बच रहा था, सर्दी थी ही, तो क्या रोड़ा था। रखवाली, किसकी रखवाली? मुर्दा लेकर कौन भागेगा? फिर भी पंडित को मुर्दे की खैरियत तकाकर वे चारों किसी पास की दारू की ठेकी की तलाश में निकल पड़े। उन्हें आधे घण्टे में वापसी की ताकीद की गयी थी, जो कबूल थी। उन्हें कौन सा ठेकी पर धूनी रमानी थी। चलते–चलते वे हनुमान सेतु तक आ गये। सेतु तक आ गये थे, तो लगे हाथ हनुमान जी को उन्होंने प्रणाम किया और मंदिर के पिछवाड़े से ही सटी बांस की फट्टी से बनी पुलिया पर से उतरकर वे ठेकी पर पहुँच गये। वहां उन्होंने उन सारे पैसों की शराब पी, जो कर्माही के बाद बचने थे। सर्दी की सुरसुराहट से जूझते हुये उन्होंने अद्धो के कई दौर चलाये सो उन्हें घंटो लग गये।

इस बेतरतीब बैठक में उन्होंने केलो के सद्गुणों को याद किया, अवगुणों के जिक्र से परहेज किया और एक अच्छे साथी को खोने के गम में फूट–फूट कर रोये भी, भले ही नशे के आवेग में। जब तक उन्हें अपनी वापसी के सबब याद आते। पौने छः बज चुके थे, जबकि पंडित ने उन्हें हर हाल में सवा पांच तक लौट आने की ताकीद की थी। केलो का जिक्र आते ही वे यों फिक्रमन्द हो गये, मानो केलो मुर्दा न होकर मरीज हो, जिसकी हालत गुजरते वक्त के साथ बिगड़ती चली जा रही हो। देरी की वजह से हल्कान मुर्दे के खैरख्वाह खुद को और एक दूसरे को कोसते हुये वहां से भागे। नशा काफूर हो चुका था। जिम्मेदारियों ने उन्हें बेचौन कर दिया था। एक दूसरे के आगे पीछे चलते हुये वे केलो के जिस्म के पास पहुँचे तो उन्हें तसल्ली हुई कि मुर्दा सही–सलामत था, तो उनके चेहरों पर जिन्दगी की अलामतें लौट आयीं थी। उनकी फिक्र बिला वजह न थी। क्योंकि मूने और बरसाती ने एक बार मुर्दा चुराया था और उसे बेच भी दिया था तीन हजार में। किसी मेडिकल–वेडिकल के लाइन के आदमी को। वे लोग केलो को चुराकर क्या कर सकते थे–क्या पता? इसीलिये इन चारों का मुर्दे के लिए डर लाजिमी था। तहजीब और नफासत के शहर लखनऊ में जिन्दा मुर्दा कोई सलामत न था। आनन–फानन में अन्त्येष्टि की तैयारी हो गयी।

छह बज चुके थे। सारी तैयारियां होने के बाद पंडित कल्लू शुक्ल को मंत्रोच्चार हेतु बुलाया गया। मगर पंडित जी के प्रस्ताव ने तो उन चारों को बेचौन कर दिया। ठंड और देरी का चक्रवृद्धि व्याज लगाते हुये उन्होंने अपने मेहनताने की रकम को तीन गुना कर दिया था। पंडितजी को पता था कि इतनी देर हो जाने के कारण कोई दूसरा पंडित उन्हें नहीं मिलेगा, फिर पंडितजी को खुन्नस भी हो गयी थी कि इन मुओं के पास दारू में उड़ाने के पैसे हैं तो फिर अन्त्येष्टि सस्ते में वे क्यों करें। मगर मोल–भाव करते–करते ड्योढ़ी रकम पर मामला तय हो गया। फिर जब रकम जोड़ी गयी तो वो उतनी ही थी जितनी कि पीने के बाद बची थी। कल्लू शुक्ला टस से मस न हुये। मुर्दे की रखवाली, जानलेवा शीतलहरी और इतने इन्तजार के बाद, श्मशान में उधारी नहीं चलेगी। पंडितजी ने अपना अनुभव बताया कि

श्मशान और जुए की उधारी कभी किसी ने लौटकर नहीं चुकायी है। सो उधारी कबूल न हुई। गिड़गिड़ाना, कसम, आश्वासन से पंडितजी का रोज का वास्ता था इस श्मशान में। सो वे न पसीजे। सर्दी बढ़ रही थी। पूरी रकम शुक्लाजी के सामने थी। उन्हें रस महसूस न हुआ। कुद्ध दृष्टि से पहले उन्होंने पहले रकम को देखा, फिर उन चारों को। उन्होंने 'राम–राम' कहा और वो चलते बने। वे चारों किंकर्तव्यविमूढ़ थे। अंधेरा और सर्दी बढ़ रही थी। घाट सूने हो रहे थे। उनकी संवेदनायें जेब के अर्थशास्त्र से हार चुकी थी। अन्तिम विकल्प यानी मंत्र किसे आते थे, मगर ईश्वर में आस्था तो थी, उसी को सर्वोपरि मानकर तौर तरीकों के लिये माफी मांगी गयी। चिता को तीन बार वे तीनों घूमें। बरसाती दूर ही खड़ा रहा। मूने चिता को तीन बार घूम कर बोला– "हे ब्रह्मा जी, केलो स्वर्ग आ रहा है"।

ऐसा ही जोखन ने किया, तीन बार घूम कर हाथ जोड़कर बोला– "हे बिष्णु महराज, केलो को स्वर्ग में ले लेना"।

पुनः पंइया ने भी ऐसा ही किया– "हे शंकरजी, केलो की स्वर्ग यात्रा आसान करना"।

तीनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये तो बरसाती हाथ उठाकर बोले– 'केलो, इस दुनिया में एक अच्छा आदमी था वो मरकर भी खुश रहेगा।" और फिर केलो की चिता जला दी गयी।

चिता जलते ही वे आहलादित हो गये। उनके चेहरों पर उल्लास था। अन्त्येष्टि की चिन्ता काफूर हो चुकी थी। चिता से निकलती लपटों और उसमें जलते केलो के जिस्म से वे केलो को साक्षात स्वर्ग जाता देख रहे थे। मूने बोला– "केलो एक धांसू आदमी था। भगवान इसे स्वर्ग ही भेजना। मेरे हिस्से का पुण्य भी इसे ही दे देना, अगर कम पड़े तो"।

पंइया भी धीरे से बोला– ''केलो ने कभी किसी का दिल नहीं दुखाया। जानकीनाथ इसकी सब भूल–चूक माफ करना और इसे स्वर्ग में ही लेना"।

बरसाती मुस्कराते हुये बोला– ''या अल्लाह, फिर गड़बड़ा गया। हे केलो के भगवान,, केलो को स्वर्ग ही भेजना। उसके जाने से किसी का रास्ता जो साफ हो गया, क्यों बे जोखना"।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जोखन ने कबरी को लेकर कहे गये बरसाती के कुटिल व्यंग्य पर एक गंदी सी गाली दी, फिर ठंडी आह भरते हुये बोला– "हाँ भगवान, केलो भाई को स्वर्ग ही भेजना। मुझे बहुत उधार दारू पिलाई उसने। बड़ा मरदराज आदमी था। कबरी को उसने नहीं छोड़ा, जबकि जानता था कि उसे सफेदा है। भगवान, स्वर्ग ही देना"।

मूने ने पूछा– "का फर्क है कोढ़ और सफेदा में। केलो भाई को जाने से तो कबरी रांड़ हो जायेगी"।

जोखन ने मूने को गरियाते हुये कहा– ''उपरवाला केलो भाई की आत्मा को शान्ति दे। मगर कबरी कहां भला केलो से अहिबाती (सुहागन) थी। क्यों मियां''?

बरसाती की तरफ देखते हुये जोखन ने अपनी बात पूरी की। बरसाती गुर्राते हुए बोला– ''अब चुप भी करो रांड़ के जनों। ये श्मशान है, दिल्लगी का अड्डा नहीं। कबरी की बात छोड़, केलो भाई की बात करो"।अपने–अपने हाथ जोड़कर अपने–अपने इष्ट देवों को उन्होंने केलो को समर्पित किया। बरसाती ने पहले दुआ के लिये हाथ उठाये थे, मगर तड़ाक से प्रार्थना हेतु हाथ जोड़ दिये अन्य तीनों की भांति। मिनट भर बाद ही, अपने–अपने भगवानों को उन्होंने केलो की मृत्यु के बाद की औपचारिकताओं हेतु तका किया। फौरन उन्होंने श्मशान के सेवक को बुलाकर कहा कि वो देर–सबेर केलो की अस्थियां गोमती में प्रवाहित कर दें। उन्होंने अपने सम्मिलित रकम का आधा हिस्सा उस सेवक को दे दिया। हालॉकि उस सेवक में विसर्जन का ये काम महज एक अद्धे में कर देने का वादा किया। मगर वे चारों जानते थे कि दारू की एवज में दिये गये वचन बहुत ही पक्के होते हैं। फिर वे हजरात इस रकम को बचाना बेमानी और फिजूल समझते थे। मूने ने समझाया कि सब नदियाँ आपस में बहनें होती हैं। अस्थियां चाहे गंगा में डालो या गोमती में। बात एक ही होती है। तीनों ने उनकी बात का समर्थन किया और सेवक ने सहमति दे दी। पैसे फिर भी बच रहे थे। दुःख था, सर्दी थी। जिम्मेदारी उतारने की संतुष्टि भी थी फिर इन्तजार किसका था? कुछ घंटे बाद वे लुढ़कते सुबकते मौसी के ठेकी पर हाजिर थे। ठेकी आज सिर्फ उन चारों हेतु ही

खुली थी। भी बच रहे थे। दुःख था, सर्दी थी। जिम्मेदारी उतारने की संतुष्टि भी थी फिर इन्तजार किसका था? कुछ घंटे बाद वे लुढ़कते सुबकते मौसी के ठेकी पर हाजिर थे। ठेकी आज सिर्फ उन चारों हेतु ही खुली थी।

मौसी ने बताया कि देर से नहाने के कारण कबरी को बुखार चढ़ गया है मगर उन चारों का खाना उसने फिर भी बना दिया था। वे चारों अद्धे की बोतलों में पानी मिला– मिलाकर उसे पूरा करके पी रहे थे और केलो की यादों को ताजा कर रहे थे। उनकी बतकही से मौसी कुढ़ रही थी, कि बिना ब्राह्मण के की गयी अन्त्येष्टि केलो के स्वर्ग जाने में बाधक थी। सो उन लोगों ने अनर्थ कर डाला। मगर वे चारो आश्वस्त थे कि उन्होंने केलो की कर्माही पूरे मन से की है। भगवान ने उनकी प्रार्थना अवश्य सुनी होगी। केलो जरूर स्वर्ग जायेगा। मौसी लगातार बड़बड़ाये जा रही थी। दूसरे कमरे में पड़ी कबरी सिसक रही थी और वे चारों पीते–पीते फफक कर रो पड़ते थे। कुहरा बढ़ता जा रहा था। रात गहराती जा रही थी।

फार्म – 4

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान :
जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

2. प्रकाशन की आवर्तिता :
त्रैमासिक

3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम :
बृजेन्द्र अग्निहोत्री

4. राष्ट्रीयता :
भारतीय

5. सम्पादक का नाम :
बृजेन्द्र अग्निहोत्री

6. राष्ट्रीयता :
भारतीय

7. पूरा पता :
जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

8. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता :
स्वत्वाधिकारी बृजेन्द्र अग्निहोत्री

*"मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।"*

बृजेन्द्र अग्निहोत्री

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

दौलतमंद

मौसमी चंद्रा
पटना, बिहार
poetraja5march@gmail.com

रेण्डम क्लिक्स..मी ऑन टेरेस! फेसबुक खोलते ही अनन्या की तस्वीरों का एक पूरा बंच था। हँसती ,खिलखिलाती,कहीं होठों का पाउच बनाकर,कहीं चाँद को देखती,कहीं दोनों हाथों को पंख की तरह पसारकर आसमान में उड़ने की तैयारी! एक पर एक पोज! खूबसूरत भी इतनी कि रात के 12 बजे भी पिक्चर ले तो वो भी माशाअल्लाह! और एक हम है।एक अदद फोटो के लिए शीशे के सामने अच्छी–खासी मशक्कत! आये दिन उसका फेसबुक एकाउंट भरा रहता, उसकी सतरंगी तस्वीरों से! लेटेस्ट ड्रेसेस, लेटेस्ट शूज कलरफुल बालों में हर दिन नए रंग रूप के साथ! लड़के जहां उसे देखकर आहें भरते, वहीं हम लड़कियां जल–भुन जातीं। कितनी लकी है! एक तो बेपनाह खूबसूरत दूसरी दौलतमंद! हमें तो कई दिनों तक मम्मी की चिरौरी करनी पड़ती है, तब जाकर कुछ हटकर मिलता है। नहीं तो फिर वही तीज त्योहारों पर नए कपड़े। वो भी इस्टीमेट के अंदर। जरा भी हिसाब से बाहर हुआ दाम, की दुकान में ही मम्मी की आग्नेय दृष्टि! पर एक ये है अनन्या! कुछ लड़कियां तो अपनी भड़ास वाट्सअप फेसबुक पर उसे ब्लॉक करके निकाल लेती। पर मैं सोच भी नहीं

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सकती ऐसा करना। वजह.. वो मेरी दिल से फेवरेट है! करीब दो साल से देख रही हूँ उसे। सोशल मीडिया पर छाई रहती।मम्मी पापा दोनों मल्टीनेशनल कंपनी में, ऊपर से अनन्या उनकी इकलौती सन्तान! रईसी तो होनी ही थी। कमी किस बात की।

अचानक कुछ दिन उसकी कोई नई पोस्ट नहीं आयी। करीब महीने दो महीने बिल्कुल लापता। फिर वापस से दिखी। शार्ट फ्रॉक और बूट्स पहने। पर चेहरे पर चमक कम। गहरे मेकअप के बाबजूद बुझी–बुझी आँखें। पहले से दुबली। किसी ने कॉमेंट में पूछा भी तो रिप्लाई था– 'डाइट कंट्रोल... हेल्थ कॉन्सेस यू नो!'

पिक अपलोड किया भी तो रात के तीन बजे! मुझे मिसिंग लगा कुछ। शायद उसकी स्माइल में। उस दिन के बाद फिर वो दिखी नहीं। एक दिन मैं कॉलेज से लौटते वक्त मेरी नजर शॉप के बाहर एक डमी पर गयी। बेहद खूबसूरत पिंक गाउन! मैंने अपनी फ्रेंड को दिखाते हुए कहा– 'देख न कितना सुंदर है... सेम ऐसा ही गाउन अनन्या ने भी पहन रखा था।'

'कौन अनन्या ?'

'वो फेसबुक वाली! तुम्हारी तो रिलेटिव भी है न दूर की!'

'ओह! वो!' उसका नाम सुनकर वो उदास हो गयी।फिर धीरे से बोली– 'तुझे पता नहीं सुसाइड कर लिया उसने।'

'क्या! कब??'

'हाँ यार! पन्द्रह दिन हुए करीब।'

'पर क्यों... क्या कमी थी उसे!'

'ज्यादा तो नहीं पता। पर सुनने में आया कि साल भर से किसी लड़के से रिलेशन में थी... ब्रेकअप हो गया। खुद को संभाल नहीं पाई और नतीजा...!'

'सिर्फ ब्रेकअप की वजह से जान दे दी। कितनी मोटिवेशनल बातें लिखती थी सोशल मीडिया पर। फिर इतनी छोटी सी बात पर सुसाइड। हजम नहीं हो रहा। क्या कमी थी उसे इतनी रिच मम्मी पापा... दोनों हाईप्रोफाइल! ऐसे लड़कों की लाइन लगनी थी।' मैं हैरान थी।

'यही तो प्रॉब्लम थी। मम्मी पापा दोनों हाईप्रोफाइल! तभी बेटी के लिए समय नहीं था। किस मानसिक तनाव से जूझ रही थी, उससे कोई मतलब नहीं। कुछ लोग भूल जाते हैं कि लक्जेरियस और

कम्फर्टेबल लाइफ से ज्यादा बच्चों को मम्मी–पापा के साथ कि दरकार होती है। बचपन से अनन्या ने बहुत अकेलापन झेला था। फिर उसने अपनी खुशी इन निर्जीव चीजों में ढूंढनी शुरू कर दी। पर प्यार में धोखा बर्दाश्त न कर पाई। बहुत कोशिश की होगी उसने इससे बाहर आने की। काश! कोई समझ पाता उसके अंदर क्या चल रहा है। कोई अपना होता जो उसके इमोशन स्ट्रेस को शेयर कर पाता। पर कोई नहीं था। वो अंदर ही अंदर घुलती रही और अंत में...!' आगे के शब्द उसके कंठ में रह गए।

मैं खुद सदमे में थी।

घर में घुसते ही माँ ने मेरा उतरा चेहरा देखा– 'क्या हुआ बेटा उदास लग रही है ?'

'कुछ नहीं माँ!' बोलते हुए मेरी आँखें नम हो गयी।

'अरे! क्या हुआ बच्चा ? सब ठीक तो है ? अपनी माँ से नहीं कहेगी ?'

माँ के प्यार भरे शब्द दिल में उतर गए। मैं माँ की कमर से लिपट गयी। आज खुद को दुनिया की सबसे दौलतमंद महसूस कर रही थी। हम सच में भाग्यशाली हैं जो हमें सुनने वाले लोग हमारे आसपास हैं!

कसक

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-0-3

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

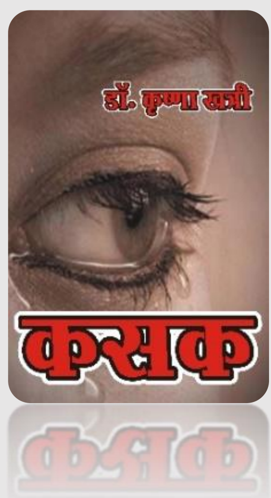

सुरंग के चौकीदार

संदीप शर्मा
618, वार्ड नं. 1, कृष्णा नगर, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश

बाँध का कार्य तो चल ही रहा था साथ में मुख्य सुरंग का काम भी चल रहा था। सब निकल गए काम खत्म करके और बस अब हरिया और धानू को बारी–बारी सुरंग के प्रवेश द्वार के बाहर एक कोने में अपना बसेरा सजाना था। जहाँ टीन के पतरों का एक मामूली शेड था बना । वे सुरंग के चौकीदार थे। जब सब लोग बाहर निकल जाते तो फिर उनका कार्य प्रारंभ हो जाता। आजकल हरिया की बारी थी। सुरंग के घुप अँधेरे में अब सिर्फ ऐसी आत्माओं को रहने की आज़ादी थी जिन्हें अँधेरा पसंद हो, वरना यहाँ सिर्फ अधेड़ चौकीदार हरिया रह सकता है। एक मद्वम रोशनी का बल्ब उसके करीब एक डंडे से लटका होता जो कभी बुझ जाता तो मिट्टी के तेल से चलने वाली लालटेन या फिर एक बड़ी टार्च उसके पास होती। नियम के अनुसार उसे सुरंग के मुहाने पर अपना स्थान निधार्रित करना था, पर वह बड़ा हठ्ठी और सनकी विचारों वाला हैं। इसलिए किसी की परवाह किए वह सुरंग के काफी अंदर अपनी चौकीदारी करता। जहाँ अँधेरे का साम्राज्य इंसानी शरीर और आत्मा के लिए डर के अनिवार्य विचारों की तरंगों का ज्वार पैदा करता रहता। अगर कोई और होता तो सिर्फ सुरंग के मुहाने पर अपना बिस्तर सजाता पर उसने यह सब अपनी मर्ज़ी से किया है न जाने उसे सुरंग के अँधेरे में रात के जीवन में क्या स्वाद आता। आख़िर वह ऐसा क्यों कर रहा है? इस बात की जिज्ञासा में उत्तर यह है कि उसने अपने चौकीदार साथी धानू से मज़ाक में ही कभी कह दिया था जब धानू की इस सुरंग की चौकीदारी की बारी थी। हरिया बोला– ''भई सुरंग के मुहाने पर सोए रहते हैं, ज़रा रात को अंदर का आभास भी ले लेना था।''

धानू बोला– ''भाई हरिया, मैं तो यहीं ठीक हूँ पर तुम्हें कुछ करना है तो जब तुम्हारी बारी आएगी तो फिर तुम अंदर अँधेरे की तहों में जीवन के रास्तों की रोशनी ढूँढ लेना।''

बस यह मज़ाक हरिया के सिर पर भारी पड़ गया था। हरिया शान से बोला–''कोई बात नहीं भाई, वैसे इस चौकीदार के काम से अगर जीवन के रहस्यों को समझने में कोई मदद मिलती है तो मैं यह भी करके देख लेता हूँ।''

''देख लो भाई, मैं तो वैसे ही मज़ाक में कह रहा हूँ क्योंकि भला कौन पागल होगा जो हाथों में बिखरती रोशनी को छोड़कर अँधेरे से दोस्ती कर ले।''

''धानू, मुझे चाहे रोशनी छोड़नी पड़े या फिर अँधेरा जो मेरे भाग्य में आ जाए, पर मैं अब हर रात सुरंग के अंदर ही बिताऊँगा, बस ज़रा इस बात का बखान साहब को न कर देना, वरना मुफत में ही नौकरी चली जाएगी।''

उस दिन से हरिया का घोंसला सुरंग का अधेरा ही था। सुरंग में कोई और काम तो उसे करना न था, बस स्टोव को जलाने के बाद वह अपने लिए आटा गूँथकर चार चपातियाँ बनाता और फिर मुंगी व मसूर की दाल की दो कटोरियाँ बनाकर मंजे पर सोकर बल्ब को कपड़े से पकड़कर निकाल देता। जब चहुँ ओर अँधेरे का साम्राज्य फैल जाता तो उसके अंदर सबसे बड़ा खतरा आत्मा में दुबके डर से लड़ने का होता। उसकी नींद में खलल के लिए यहाँ कई सैनिक है जिनके हाथों में तीखे बरछे हैं और वे चुपचाप इस अँधेरी गुफा में उसको डराने के लिए तैयार खड़े हैं। पहला कार्य जो उसने किया कि अपने इस ख़्याल को पक्का किया कि यह ऐसी जगह है जहाँ सिर्फ ईश्वर के महीन कण तो प्रवेश कर सकते हैं लेकिन यह स्थान सूर्य की रोशनी के लिए नहीं है। इस जगह के भाग्य में पहले से ही लिख दिया है कि यहाँ कोई सूर्य नाम का देवता कभी प्रवेश नहीं कर सकता तो फिर सूर्य के बिना इस जगह की कल्पना करना बेहतर है इसे सूर्य नाम का स्वप्न कभी नहीं आना चाहिए। अँधेरे मे जीने का यही मूल मंत्र हो सकता है। अब रही डर की बात तो यहाँ तो सिर्फ अँधेरा है और इस अँधेरे में मुझे अपने मन की रोशनी को ढूँढना है। मैं अगर उस डर को यहाँ की खामोशी से डरा सकूँ तो यहाँ आसानी से रह सकता हूँ। यह एक और डर भी है पानी की बूँदे जो टपकती

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रहती हैं वे ये संदेश दे रही है कि यह सुरंग कभी भी दरक सकती है और मेरा खात्मा हो सकता है। पर ये पानी की टपकती बूँदे मेरे लिए एक जीवन संगीत पैदा कर रही हैं, यह जीवन का संगीत है जो मिट्टी से मिलकर सोए बीजों को फूलों, फलों व कोपलों में बदलने और जागने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए मुझे इन बूँदों से प्रेरित संगीत को अपना प्रीय संगीत समझना होगा। अब बची रात के अँधेरे में किसी के टहलने की आहट तो भला रात के अँधेरे में टहलने वालों को मैं कैसे रोक सकता हूँ, ये कोई आत्मा भी हो सकती है, या फिर कोई देवता भी। ये सूक्ष्म तरंगे भी हो सकती है जैसे इस लटकती तार के बीच छिपा करंट अदृश्य होकर घूमता रहता है, पर जब तक बल्ब न जोड़ा जाए, वह करंट गुप्त रहता है इसका मतलब मैं जब तक उन टहलने वाले अदृश्य प्राणियों के लिए अपने मन में कोई बल्ब नहीं जोड़ता हूँ वे मेरे करीब नहीं आएँगी। अच्छा तो अब मेरे मन के अंदर उठने वाले विचारों को कुछ करना पड़ेगा जो मुझे परेशान करने और मेरी नींद में खलल डालने के लिए मेरे भीतर की रोशनी का उपयोग करके नई कोपलें उगा सकती हैं मुझे उन कोपलों को मिट्टी से दूर करना है। उसने अपने पास ईश्वर की एक छोटी सी फोटो रखी है जिस पर भगवान भोले शंकर की फोटो है। यह फोटो उसने अपने छोटे संदूक पर मिट्टी के एक ढेल्ले से टिकाकर रख ली है। सुरंग जिसमें हवा का प्रवेश बहुत कम होता और अभी यह निर्माण के प्रथम चरण में थी। बस हरिया की सुरंग की यात्रा शुरू हो चुकी थी।बरसात का मौसम शुरू हो चुका था।

अभी शाम होते ही बाहर बारिश शुरू हुई कि धानू सुरंग में घुस आया था। हरिया, हरिया की आवाज़ें करता वह अँधेरे को टार्च से चीरता हरिया के बसेरे तक पहुँच ही गया। अंदर स्टोव के जलने से मिट्टी के तेल की बास से उसे पता चल गया कि हरिया अंदर ही है।

''तुम क्या लेने आए अंदर।'' हरिया ने जैसे किसी तपस्वी की तपस्या भंग करने वाले राक्षस की तरह धानू को पुकारा।

''अरे भाई, तुम तो सचमुच के ही योगी बन गए। भई मान गए तुम्हें। शाम हुई नहीं कि तुम अंदर आ गए हो। मैं तो तुम्हारा बाहर इंतज़ार करता रहा। फिर सोचा कहीं अंदर न हो, तुम क्या सचमुच में ही रोज अंदर सोने आ जाते हो। क्या पागलपन है, ये

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सुरंग नहीं किसी डायन का पेट है, तुम आखिर बड़े दिल वाले निकले। अरे किसी के कहने पर यूँ ज़िद नहीं करते।''

''भाई धानू ये अँधेरा हमारा दुश्मन नहीं है, असल में हमारे मन ने अँधेरे से लड़ने का गुर ही नहीं सीखा होता है। असल में हमारे मन ने तो इस ब्रह्मांड में फैले अँधेरे को कभी महसूस ही नहीं किया। वह पल में किसी भी कंदरा में सूरज को ढूँढ लाता है, तो कभी सागर की गहराइयों में सोए अँधेरे के सिरहाने रखे सूरज को उठा कर भाग आता है, इसलिए अँधेरा तो आँखों के लिए होता है। मन के लिए कोई अँधेरा नहीं।''

''वाह भाई हरिया बाबा, आज से तुम बाबा बन गए हमारे लिए। अच्छा अब यह तपस्या छोड़ो और बरसात शुरू होने से पहले इस गुफा को छोड़ दो, कहीं ऐसा न हो कि डैम वाले सुरंग बंद कर दे और तुम्हारी कुटिया सदा के लिए यहीं दफ़न हो जाए।''

हरिया चुप न रहा, ''अब चाहे सुरंग बंद हो या फिर पहाड़ दरक जाए। मैं तो बरसात का मौसम खत्म होने तक यहीं रहूँगा। मुझे तो बस इसकी आदत लग गई है। यहाँ अंदर ऐसा लगता है जैसे मोह–माया तो अंदर आती न है। जब आँखों के सामने सदा अँधेरा रहता हो तो मोह–माया जैसी रंग बिरंगे कपड़े पहने सुंदर स्त्रियाँ यहाँ कैसे आएँगी।''

धानू स्टोव की रोशनी में कभी–कभार दिखते हरिया के मुख को ऐसे घूर रहा था जैसे वह किसी भूत से बातें कर रहा हो। ''अच्छा आज रात मैं यहाँ तुम्हारे साथ ही सोऊँगा, देखता हूँ कि तेरे साथ रहकर मैं क्या सीखता हूँ।''

''अच्छा मैं दो कटोरियाँ डालता हूँ, दाल की और एक बात पहले ही कह देता हूँ, तू दोष मुझे मत देना, मेरा क्या, मेरे को आदत पड़ चुकी है, पर तू रात भर अगर सो न पाया तो फिर तेरा मूड़ खराब होगा।''

''बस हरिया, मैं भी धानू हूँ, जो होगा वह बस अच्छा ही होगा। वैसे बाहर मौसम बहुत खराब है, बरसात पहले से लगी है।''

दोनों ने दाल और चपातियाँ खाईं और सुरंग के मुहाने पर मौसम का तकाजा लेने चल पड़े। वैसे सिर पर इतनी बड़ी छत हो तो मौसम की क्या मार, पर धानू मौसम की चिंता में आगे बढ़ता गया। धीमी रोशनी की टार्च और उनके पैरों की खप्प–खप्प प्रतिध्वनियाँ बना

रही थी, कान कुत्ते के कानों की तरह स्तर्क होते जा रहे थे। वे दोनों जैसे ही सुरंग के मुहाने तक पहुँचे कि तेज़ बिजली जैसे उनके शरीर के ढांचों को फाड़कर सुरंग में घुस गई। बाहर घुमड़ते काले बादलों का झुरमुट मदमस्त फैला था। बिजली की आँखों के फैलते प्रकाश से नीचे सतलुज की धार नज़र आई। धानू के चेहरे पर शंकाओं के बादल घिर रहे थे। जो डर को उसके मन के घोंसले में बसेरा बनाने को उकसा रहे थे। तेज़ बारिश मूसलाधार बारिश में बदल चुकी थी और तूफान के थफेड़े पानी से सुरंग के मुहाने को कीचड़ से भर चुके थे।

''वैसे मैंने ग़लती कर दी हरी, मुझे आज निकल जाना चाहिए था घर,'' परेशान सा होकर धानू बोला, ''मुझे किसी मुसीबत के आने का आभास हो रहा है। वैसे भी इंजीनियर साहब कह रहे थे।'' और वह वहीं रुक गया।

''क्या कह रहे हो धानू।''

''अब छोड़ो परे मित्र, तुम्हें क्या फर्क पड़ता है, तुम तो बाबा बन गए हो, पर हम तो मामूली इंसान है।''

''तुम खुल कर बोलो, रात को जो मन में आए, बोल देना चाहिए। ज़िंदगी का ज़्यादा भरोसा ठीक नहीं।''

''इंजीनियर साहब कह रहे थे कि यह सुरंग दरक सकती है पहाड़ का एक हिस्सा कमजोर है और ऊपर से चट्टानों का दबाब है, कम्पनी वालों ने सर्वे में चूक की है और वे इस सुरंग को सिर्फ इस बरसात के बाद जल्दी पाइपें फिट करके छोड़ देंगे। यही कम्पनी का निर्णय हुआ है वो तो चीफ इंजीनियर का चपरासी मेरा मित्र है तो जरा अंदर की बातें पता थी।''

''अच्छा, अब आ रहा है तुम्हें सब याद, तुमने तो मुझे भी डरा दिया। अब मुझे इसके अंदर रहने के लिए अपने मन से बहुत लड़ना पड़ेगा।''

धानू और हरिया सुरंग के अंदर चले गए। बाहर मूसलाधार बारिश होती रही। बाहर तूफान और बारिश से सुरंग में अनचाही विचित्र गूँजें पैदा हो रही थी। सुरंग के अंदर की निस्तब्धता का सीना चीर कर हवा कुछ कदम आगे बढ़ती और फिर थम कर वहीं बेहोश गिर जाती। धानू के पैरों में तार फँसी और वह धड़ाम से गिर गया।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

वह उठा और एक गाली बकी, ''साला तार टूट गई है अब दूसरा हिस्सा कहाँ है जरा ढूँढो तो।''

''अब छोड़ो परे, अब कैसे जोड़ेगे इसे इस वक्त, चार्ज वाली टार्च है, सुबह देखेंगे और दोनों पानी की टपकती बूँदों को लाँघ कर अपने तुच्छ घोंसले तक पहुँच गए। अंदर धीमी ठंडक–भय की वास्तविक ठंडक में परिवर्तित हो गई थी।

हरिया टार्च की रोशनी को व्यवस्थित करते बोला, ''आज सचमुच ही मेरे अंदर भय के अँकुर पैदा हो रहे हैं, मैं कुछ देर ध्यान मे बैठना चाहता हूँ, तुम सो जाओ, एक ही मंजा है मैंने ये ध्यान की कला एक बाबा से सीखी थी, तुम्हें याद है जब हम दूसरी सुरंग के कार्य में लगे थे तो ऊपर पहाड़ी पर मंदिर में बाबा रहते थे। मैं कई बार उनके पास चला जाता था। वे तो मानो पूरी रात ध्यान में ही सोए रहते थे। सुबह ऐसा लगता था जैसे वे जी भर कर सोए हों।''

''वाह रे हरिया बाबा, जो करना है करो, मैं तो बस सुबह के इंतज़ार में ध्यान मग्न हूँ। तुम्हारा क्या है? तुम तो पहले से योगी हो, बस गेहुँए वस्त्र धारण नहीं किए वरना हर कोई तुम्हें बाबा कहता। वैसे भी पहाड़ का योगी चाहे किसी भी वेस में हो, उसका रंग –ढंग अगल ही होता है। इन पहाड़ों ने और सिखाया ही क्या हमें? बस सहनशीलता ही सिखाई और जैसे खुद ये पहाड़ ध्यान में बैठे हैं वैसे ही इनके आँचल में रहने वाले भी योगी बन घूमते है।''

हरिया टिमटिमाते प्रकाश की रोशनी को व्यवस्थित करते बोला, ''अब कहाँ रहे हैं ये पहाड़ योगी? और कहाँ बैठे हैं ध्यान में तपस्या में। इनके तो सीने बड़ी मशीनों ने छलनी कर दिए हैं, ये सुरंगे ये बाँध इन्हे अपने उपयोग की वस्तु और निर्जिव समझते हैं, इसमें देख हमारी मजबूरी, बातें तो हम इनकी चिंता की कर रहे हैं और इनको उजाड़ने वालों की नौकरी कर रहे हैं। क्या प्रपंच है ये हमारा। मैं सच बताऊँ धानू, जब ये मशीने पहाड़ के गर्भ में छेद करती हैं तो मुझे ऐसा लगता जैसे ये पहाड़ के देवता के शरीर में लोहे की छड़ घुसा रहे होते हैं, मेरा दिल दुख से भर जाता है। तुम जानना चाहते थे कि मैं क्यों सुरंग के अंदर चला जाता हूँ। इससे मुझे अहसास होता कि मैं पहाड़ के गर्भ में हूँ और मुझे उसके दर्द को समझने का मौका मिल जाता है।''

''वैसे हरिया अब चाहे तुम कोई प्रपंच कर लो, ये पहाड़ हमसे रूष्ठ हो चुके हैं और हमारी बाजुओं में इतना दम नहीं कि हम इनकी पीढ़ा को उठा सकें।''

''अरे हम तो तुच्छ कीड़े हैं जो इधर –उधर रेंगते है, हममें कहाँ ये साहस? देखा नहीं था तुमने जब बाँध बनने लगा था तो कंपनी ने मोटे पैसों के थैले सबके पास पहुँचा दिए, लोग चुप हो गए सतलुज का रूदन फिर कौन सुनता। जो तख्तियाँ उठाकर हमारे हिमायती बने थे और जिनके गले पहाड़ के रक्षक बन चिल्लाते थे, वे पता नहीं किस घाटी में छिप गए।''

''अच्छा मुझे लगता है बाहर बारिश लगातार बढ़ रही है, पानी की बूंदे बढ़ने शुरू हो गई। यही हाल रहा तो हमें सुरंग छोड़नी पड़ सकती है, यहाँ बहुत खतरा है।''

धानू उठा और बाहर सुरंग के मुहाने की ओर निकल गया। उसके हाथों में मद्दम रोशनी वाली टार्च थी, मिट्टी का दीया हरिया के हिस्से को रोशनी दे रहा था। हरिया धानू के डर को नहीं रोक पाया और उसे जाने दिया। धानू जैसे ही मुहाने के पास पहुँचा तो बाहर डैम के आस पास के तुच्छ रोशनी बाँटते बल्ब धुंध और बारिश के साम्राज्य में लुप्त से लग रहे थे। बारिश की बौछारें अंदर तक घुस रही थी। पैरों के नीचे कीचड़ ही कीचड़ था। चहुँ ओर जैसे बारिश का अपना राज़ था। बस वह बरसने के अपने हुनर का प्रर्दशन कर रही थी। पास के नाले की गर्जना उसके कानों तक पहुँच रही थी। नीचे गहरी सतलुज पागल सी हो गई होगी, पर वह यहाँ से दिखाई नहीं दे रही थी। पहाड़ की मूसलाधार बारिश थी यह, जो तूफान के रथ को साथ लेकर बढ़ती है। तेज़ हवा के एक थपेड़े ने धानू के ऊपर पूरी बोछार फेंक दी। वह लगभग भीग गया। ठंडी बर्फ़ सी बूंदों ने उसकी चेतनता को तीर्व कर दिया।

''पागल है यह हरिया, यहीं मर खप जाएगा और इसका ये योगी–वोगी भी यहीं दफ़न हो जाएगा।''वह फुसफुसाया। पहाड़ दरकने का ख़्याल उसके मन के साथ मोटी गाँठ में बँध गया था। वह थोड़ा पीछे होकर चहुँ ओर टार्च की रोशनी फेंकता रहा, ये रोशनी बारिश की दीवार से टकराकर इधर उधर परिवर्तित होकर अँधेरे में खोए जा रही थी। उसने टार्च बंद कर दी और बस इस नज़ारे को जो डर का सेहरा बाँधे सज बैठा था उसे महसूस करता रहा। बारिश और तूफान के मिलन का खेल चल रहा था। उसके मन ने फिर पहाड़ दरकने के ख़्याल को नींद से जगा दिया।

''आज यह पहाड़ जरूर दरकेगा, सुरंग अभी कच्ची है, मैं अँदर नहीं जाऊँगा, मेरी बुद्धि खराब थी जो आज का ही दिन चुना, पर कसूर मेरा ही था जो इस सनकी हरिया को सुरंग में रहने को उकसा बैठा था। आज दोनों की जान जाएगी, सच कहता हूँ, उसके और मेरे पाप का फ़ैसला हो जाएगा। पहाड़ का देवता हर गुनाह की सज़ा जल्दी ही दे देता है। वैसे ही हमें सुरंग के चौकीदार बनने का कोई हक नहीं है। हमें तो पहाड़ के चौकीदार बनना चाहिए था, वे हम बन नहीं सके तो फिर इसी पहाड़ ने हमें अब हमारे गुनाहों की सज़ा देनी है।''

ऐसा लग रहा था जैसे बारिश से डरकर, कोई डर नाम का राक्षस सुरंग के अंदर घुसकर उसमें पहले से पड़े डर के पिटारे को बाहर फेंक रहा था। जिसे धानू बाहर खड़ा संभाल रहा था। बारिश की बोछारें कुछ धीमी होने लगी। धानू के मस्तिष्क में बिजली कौंधी। वह भागा और तेजी से हरिया के पास पहुँच कर बोला, ''चलो हरिया, पहाड़ दरक रहा है, चलो हम कंपनी के खोखों में जाकर सोते हैं, वरना मैं यहाँ से जा रहा हूँ।''

हरिया ने अपने दोस्त धानू के हृदय में बसे डर का आदर दिया और अपने देवता की तस्वीर उठाकर टार्च और अपनी छतरी, कंबल उठाकर बाहर की ओर निकल पड़े। बारिश में वे काफी भीग गए। कोई कोस भर कंपनी के खोखों में पहुँचकर वे बड़ी देर बारिश की बूँदों के टीन के पतरों के टकराने के शोर के बीच दुबके रहे। सुबह भयानक शोर के साथ एकदम से दोनों खोखे से बाहर निकले। ऐसा शोर पहाड़ के हज़ारों टन मलबे के दरकने का होता है। कुछ ही पलों में ख़बर फैल गई थी। नई सुरंग वाला पहाड़ दरक गया है, सुरंग पुरी तरह से बर्बाद हो गई है।

हरिया धानू को बड़ी देर तक मन ही मन प्रणाम करता आ रहा था। धानू पिछली रात सचमुच ही पहाड़ के देवता का दूत बनकर आया था, वरना हरिया पहाड़ के गर्भ में समा चुका होता। उसकी सारी तपस्या पहाड़ में ही दफन हो जाती। पहाड़ के देवता ने यह बता दिया है कि वह सुरंग के निर्माण से खुश नहीं है और सुरंग कभी तपस्या की जगह नहीं हो सकती। इसके बाद उन दोनों ने कंपनी की नौकरी छोड़ दी थी और अपने गाँव में खेती– बाड़ी में रम गए थे।

कहानी

पीले दरख़्त

नीरजा हेमेन्द्र
नीरजालय, 510/75, न्यू हैदराबाद, लखनऊ 07

बचपन में गुरूजनों से सुना था कि जीवन के सबसे अच्छे दिन बचपन के होते हैं। उस समय उनकी कही गयी इस बात को उतनी गम्भीरता से नही लेता था जीवन की यात्रा तय करते–करते अब जब कि बचपन को कहीं बहुत पीछे छोड़ कर यहाँ आ गया हूँ तो गुरूजनों की उस बात की गम्भीरता को समझ पाया हूँ। बचपन के उन दिनों में यदि कभी हमें बालसाहित्य की पुस्तकें पढ़ने को मिल जाती थीं तो क्या कहनें? बाल साहित्य की कहानियाँ पढ़ कर बालसुलभ मन कहानियों के साहसी, बुद्धिमान पात्रों में स्वंय को ढाल कर उनके संग–संग जीने लगता था। उन दिनों मेरे पास बाल कहानियों की पुस्तकों का अच्छा–खासा संग्रह था। बाल कहानियाँ एक अलग ही विस्तृत कल्पनालोक का सृजन करतीं और उनमें मैं विचरण करता रहता।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उन दिनों मेरे प्रिय लेखक थे श्याम सुन्दर 'शलभ'। बाल कहानियों के अद्‌भुत सृजनकर्ता। शलभ जी की कहानियाँ अत्यन्त सजीव और सुन्दर होती। मुझमें बाल साहित्य पढ़ने में रूचि जागृत करने वाली शलभ जी की कहानियाँ ही थीं। उनकी कहानियाँ पढ़ते–पढ़ते ही मेरे बचपन के दिन व्यतीत हुए थे। कहानियों की पुस्तकों पर उनकी फोटो देखता तो मन में यही इच्छा होती कि काश! शलभ जी सामने आ जायें और मैं उने चरणों में नतमस्तक हो जाऊँ। उनके लेखन की भाँति ही आकर्षक व्यक्तित्व था उनका। होठों पर एक मधुर स्मित रहती। शलभ जी की कहानियाँ पढ़ते–पढ़ते मैं उनका प्रशंसक कम उपासक अधिक बनता चला गया। उनके लिखे नये उपन्यासों व कहानियों की प्रतीक्षा रहती मुझे। बुक स्टाल पर जाकर उनकी लिखी नयी पुस्तकें ढूँढा करता।

समय अपनी गति से आगे बढ़ता रहा। समय के साथ–साथ मैं भी बड़ा होता जा रहा था। साहित्य पढ़ने की रूचि तो सम्भवतः शलभ जी को पढ़ते–पढ़ते उत्पन्न हुई थी मुझमें, अब मैं बाल साहित्य के साथ अन्य साहित्यक पत्रिकाओं को पढ़ने में भी रूचि लेता। एक दिन किसी पत्रिका के पन्ने पलटते–पलटते मेरी दृष्टि एक पृष्ठ पर ठहर गयी। आँखों में उत्सुकता और ह्रदय में प्रसन्नता की लहरें तरंगित होने लगीं। पत्रिका के उस पृष्ठ पर मेरे प्रिय लेखक शलभ जी का साक्षात्कार छपा था।

उस दिन मुझे उनके विषय में और जानने का सुअवसर मिला कि शलभ जी उच्च शिक्षित तो थे ही, साथ ही यह भी कि उनका बचपन अभावों में बीता था। अल्प वेतन में उन्होंने अपने पाँच बच्चों का पालन–पोषण करने के साथ उन्हें उच्च शिक्षा दिलायी। अपने परिवार की अन्य आवश्यकताओं में कटौती कर वे बच्चों की फीस व पुस्तकों का प्रबन्ध करते थे। माह के अधिकांश दिनों में उनके घर में खिचड़ी व दाल–रोटी बनती। उनके संघर्षों का यथार्थ मैं पढ़ता जा हा था तथा मेरे नेत्र सजल होते जा रहे थे। मैं सोचता जा रहा था कि बचपन के इन्ही संघर्षों ने उन्हें बाल मनोविज्ञान को समझने में उनकी सहायता की होगी। तभी तो वे बच्चों की छोटी–छोटी क्रियाकलापों से उनकी भावनाओं को बखूबी समझ लेते थे। शलभ जी

बड़े हुए और शिक्षा पूर्ण होने पर उन्होंने जीविकोपार्जन हेतु एक निजी कम्पनी में मैनेजर के पद पर नियुक्त हो गये। उनकी नौकरी लग जाने से घर में सभी प्रसन्न थे। उनकी दोनों बहनों का विवाह भी हो गया। बेटियों के विवाह हेतु उनके पिता ने अपने मालिक से ऋण लिया था। शलभ जी के तीनों भाइयों ने निश्चय किया कि सब मिलकर पिताजी का ऋण उतारेंगे। ...मैं शलभ जी का साक्षात्कार पढ़ता जा रहा था और सोचता जा रहा था कि शलभ जी की बाल कहानियों में चित्रित सुखद कल्पनालोक के विपरीत कितना पीड़ादायक है उनका जीवन? उनका लेखन मुझे एक तपस्वी की साधना–सा प्रतीत होने लगा, जो शरीर को तप में तपाते हुए भी मन में एक अलौकिक सुख का सृजन व अनुभूति करता है। कैसी पीड़ा की अनुभूति हुई होगी उन्हें उन घटनाओं का चित्रण करने में जो उनके यथार्थ जीवन से दूर थीं? पूरा साक्षात्कार पढ़ते–पढ़ते मेरा चेहरा अश्रुओं में भीग गया। मुझे शलभ जी की रचनायें विश्व की महानतम बाल रचनायें लगने लगीं।

उम्र ने युवावस्था में शनैः–शनैः प्रवेश किया। मैं जीवन पथ पर आगे बढ़ता गया। विवाहोपरान्त होने वाले अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने में व्यस्त था। मैं जब भी अपने दोनों बच्चों को अपने बचपन की स्मृतियों से जोड़ने का प्रयास करता तो उस प्रयास का एक सरल माध्यम बन जातीं शलभ जी द्वारा लिखी बाल साहित्य क पुस्तकें। आधुनिक समय के इण्टरनेट युग में जहाँ बच्चों की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम इण्टरनेट की आभासी दुनिया थी। किन्तु मेरे बच्चे भी शलभ जी की पुस्तकों में भी रूचि रखते थे। उनके भी प्रिय लेखक, बाल साहित्यकार शलभ जी थे।

धीरे–धीरे मेरे बच्चे किशोरवय कर ओर बढ़ने लगे और मैं प्रौढ़वय की ओर। समय परिवर्तित हुआ। रहन–सहन, वेश–भूषा, नये तौर–तरीकों के साथ ही गाँवों–शहरों में विकास, पढ़ने लिखने की नयी तकनीक में इंटरनेट की दुनिया शिक्षा को नयी ऊँचाईयों पर ले तो गयी, किन्तु उसमें से मिट्टी की सोंधी खुशबू कहीं विलुप्त थी। नयी पीढ़ी की रूचियों में भी परिवर्तन हो रहा था। उनके पास टेलीविजन पर सहज उपलब्ध कार्टून चैनल थे जो बाल साहित्य पढ़ने

में उनकी रूचि को और भी समाप्त कर रहे थे। विद्यालयी शिक्षा उन्हें व्यवहारिक ज्ञान से दूर कर उन्हें विषय के कोर्स तक सीमित कर रही थी। इंटरनेट की दुनिया में एक अच्छी बात थी कि बच्चे नयी जानकारी, नये ज्ञान व विकास के नये आयामों से परिचित हो रहे थे। किन्तु वे कहीं न कहीं हमारी प्राचीन धरोहर पंचतंत्र की कहानियाँ राम, कृष्ण, या अन्य अमर पात्रों जैसे अकबर–बीरबल, चाचा चौधरी के अतिरिक्त ऋषियों–मुनियों के बाल्यावस्था के प्रेरक प्रसंगों की कहानियों से जो नैतिकता, मानवता व प्रेम की शिक्षा देने में सक्षम थीं, उनसे वंचित हो रहे थे।

बाल साहित्य की पुस्तकें सीमित होती जा रही थीं। मेरी बुक शेल्फ में मेरे बचपन की स्मृतियाँ शलभ जी के पुस्तकों के रूप में विद्यमान थीं। आज मेरे छोटे बेटे का परीक्षा परिणाम निकला। वह भी इण्टरमीडिएट की परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो गया। जैसे ही परीक्षा परिणाम घोषित हुआ तुरन्त उसने नेट पर अपना रिजल्ट देख कर हमें सूचित कर दिया। ये हम लोगों का वो वाला वो समय तो है नही कि जिस दिन हमारा परीक्षा परिणाम निकलने वाला होता था उस दिन अखबार में से परीक्षा परिणाम का पेज प्राप्त कर उसमें अपना अनुक्रमांक ढूँढ लेना टेढ़ी खीर होती थी। आज सोच कर मुस्करा पड़ता हूँ कि उस दिन कैसे हम किसी चौराहे पर होटल या चाय–पान की दुकान पर से अखबार में अपना परीक्षा परिणाम देख कर एक–दो घंटे के पश्चात् घर लौटते। क्यों कि तब परीक्षा परिणाम कुछ ही अखबारों में निकलते। उन अखबारों में परीक्षा परिणाम देखने के लिए परीक्षार्थियों की भीड़ उमड़ पड़ती। इस बीच घर वाले उहापोह की स्थिति में होते कि बच्चा उत्तीर्ण हो गया या नही? किन्तु आज जब मेरे बेटे ने इन्टरनेट से परीक्षा परिणाम के साथ ही साथ एक–एक विषयों के अंक व प्रदेश में अपनी रैकिंग घर बैठे ही बता दी तो यह परिवर्तन मुझे अच्छा लगा।

मेरा बड़ा बेटा अपनी रुचि के अनुसार व्यवसायिक कोर्स में दाखिला ले कर आगे की पढ़ाई कर रहा है। छोटे बेटे के लिए थोड़ी–सी चिन्ता थी। वह इण्टरमीडियट करने के पश्चात् मेडिकल की तैयारी करना चाह रहा है। हम प्रसन्न हैं उसकी यह इच्छा जान

कर। आज नेट से परीक्षा परिणाम देखने के पश्चात् उसने अपनी माँ से मन्दिर जाने की इच्छा प्रकट की है। उसकी इच्छा जानकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगा। दूसरे दिन प्रातः मैं भी मन्दिर जाने के लिए तैयार हो गया। मेरा बेटा लक्ष्य प्रसन्न हो गया यह जान कर कि उसके व उसकी माँ के साथ मैं भी मन्दिर चल रहा हूँ। क्यों कि ऐसे अवसरों पर अधिकतर मेरी पत्नी ही बच्चों के साथ जाती हैं।

मन प्रफुल्लित था। मन्दिर के भव्य प्रांगण से अन्दर जाते हुए मुझे दिव्य अनुभूति हो रही थी। मन्दिर कुछ ऊँचाई पर था। वहाँ पहुँचने के लिए सीढियाँ बनी थीं। सीढ़ियों के दोनों ओर कुछ वृद्ध, बच्चे व महिलायें बैठीं थीं। मन्दिर में आने वाले श्रद्धालु उनके भिक्षा पात्र में कुछ न कुछ प्रसाद, पैसे इत्यादि डाल दे रहे थे। हम भी मन्दिर में दर्शन कर सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। मेरी पत्नी ने भी सीढ़ियों पर बैठे हुए लोगों को दान स्वरूप पैसे, प्रसाद इत्यादि बाँटने प्रारम्भ कर दिये। हम धीरे–धीरे सीढ़ियाँ उतर रहे थे। बेटे को प्रसन्न देख मैं भी प्रसन्न था। मेरी पत्नी एक वृद्ध भिखारी को प्रसाद व पैसे दे रही थी। उसने लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए उसने अपना चेहरा ऊपर की ओर उठाया। मुझे उस भिखारी का चेहरा कुछ जाना–पहचाना लगा। कुछ क्षण के लिए मेरे पग ठिठक गये। स्मरण करने के लिए मस्तिष्क पर थोड़ा जोर डाला किन्तु समझ में नही आया। यह सोच कर आागे बढ़ गया कि यह कोई भिखारी ही है। जिसे कभी मैंने किसी अन्य चौराहे, सड़क या मन्दिर में देखा हो, इसीलिए इसका चेहरा जाना पहचाना लग रहा है। मैं आगे बढ़ गया। सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। मन न जाने क्यों उस भिखारी के चेहरे में ही उलझ रहा था। अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचते– पहुँचते सहसा स्मरण आ गया कि उस व्यक्ति को कहाँ देखा है? उस व्यक्ति की पहचान सोच कर हृदय में अकुलाहट भरती जा रही थी। काश! मेरी सोच व पहचान ग़लत सिद्ध हो जाये.......उस व्यक्ति का चेहरा मुझे शलभ जी की भाँति प्रतीत हुआ। पुस्तकों पर छपी शलभ जी की तस्वीर अभी तक मेरे जेहन में स्पष्ट है। हाँ.... ये शलभ जी ही हैं।

मै तीव्र गति से वापस पलट कर सीढ़ियों से ऊपर की ओर भागा। वह व्यक्ति उसी प्रकार सिर झुकायें बैठा अगले आने वाले

दर्शनार्थी की प्रतीक्षा कर रहा था। मैं सीधे जाकर उस भिखारी के समक्ष खड़ा हो कर उसे ध्यान से देखने लगा। मुझे सामने खड़ा देख उसने अपनी गर्दन ऊपर की ओर उठाई। मैं काँप गया। आँखें आश्चर्य व वेदना से भर गयीं। इतने समीप आ कर ध्यान से देखने के पश्चात् अब मेरे मन में कोई संशय नही था कि ये शलभ जी नही हैं। मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ कर भिक्षा मांगने वाला वो दुर्बल–सा बूढ़ा व्यक्ति शलभ जी ही थे, विश्वास नही हो पा रहा था। मैं सकते में था। वे मुझे नही जानते। उनके लिए तो मैं उनका एक अज्ञात–सा प्रशंसक था। भला वो मुझे कैसे पहचानते? किन्तु वो मेरे लिए मेरे प्रिय रचनाकार..... मेरे आदर्श पुरूष थे। मैं आश्चर्य चकित–सा उन्हें देखता जा रहा था जब कि वो सामान्य थे।

''शलभ जी....आप...?'' मेरे मुँह से कम्पन के साथ निकल रहे शब्दों को सुन कर अब शलभ जी के विस्मित् होने की बारी थी।

''न.....न....नही... ।'' बुदबुदाते हुए वह व्यक्ति वहाँ से उठने लगा।

मैं प्रथम बार शलभ जी से मिल रहा था। इतनी शीघ्र उन्हें जाने देने वाला नही था।

''शलभ जी! मैं आपका प्रशंसक।'' मेरी बात को अनसुना करते हुए वह व्यक्ति सीढ़ियों से नीचे उतरने को तत्पर हुआ और मैं उसके पीछे–पीछे चलने को।

''मैंने आपकी लगभग सभी पुस्तकें पढ़ी हैं। परियों के देश में, जादुई नीलकमल, ईमानदार बालक, परिश्रम का फल, बीर बालक, सच्चाई का मार्ग आदि।'' शीघ्रता में मैं शलभ जी द्वारा लिखी कुछ पुस्तकों के नाम लेकर उनसे ही उनका परिचय कराने लगा। मेरी पत्नी व बेटा नीचे उतर कर मन्दिर के प्रांगण में पीपल के नीचे बने चबूतरे पर बैठ कर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी आँखों में कौतूहल के भाव स्पष्ट थे। मैंने उनको हाथ से वहीं बैठ कर मेरी प्रतीक्षा करने का संकेत कर दिया।

मैं शलभ जी से उनके अतीत के बारे में जानाना चाहता था। सुप्रसिद्ध बाल कथा लेखक के साथ ऐसा क्या हुआ होगा कि आज वह मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ कर लोगों की दया पर दिन व्यतीत करने को विवश हुए। मन में उनका दुख जानने की उत्कंठा थी। मैं

भी उनके साथ–साथ चलने लगा। ''क्या बात हो गयी शलभ जी? बताइये तो ? मैं आपका प्रशंसक... आपके साहित्य का पाठक। मेरा नाम प्रतीश है। आप मुझे नही जानते हैं, किन्तु मैं आपकी लेखनी के माध्यम से आपसे भलीभाँति परिचित हूँ।''

शलभ जी आगे बढ़ते जा रहे थे। वे धीरे–धीरे सीढियाँ उतरने का प्रयत्न कर रहे थे। मैंने अनुमान लगाया कि वे ठीक से चल नही पा रहे थे। कदाचित् वे बैठ कर ही सीढ़ियों पर चढ़ पाते हों।

''आप अस्वस्थ लग रहे हैं। क्या हो गया ? आप ऐसे...?'' मैं प्रश्न करता जा रहा था किन्तु शलभ जी अपनी खामोशी तोड़ने को तैयार नही थे। मुझे इस प्रकार अपने साथ साथ चलता देख कर कदाचित् मुझसे पीछा छुड़ने की मंशा से उन्होंने अपनी चुप्पी तोड़ी।

''सब समय का फेर है बेटा! ऊपर वाले की यही इच्छा है तो मुझे स्वीकार है।'' उनकी आवाज की जादुई खनक व चेहरे की सौम्यता से मैं भर उठा।

''आप मेरे साथ चिकित्सक के पास चलिये। अस्वस्थ लग रहे हैं आप। '' मैंने आग्रह करते हुए कहा। मन में संकोच भी था कि इतने बड़े लेखक के सम्मान को मेरी किसी बात से चोट न पहुँचे।

''नहीं मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है बेटा! मैं बिलकुल ठीक हूँ। आप मेरी फिक्र न करें। आपका बहुत–बहुत धन्यवाद।'' कुछ रुककर शलभ जी ने कहा।

''नही सर! आप अस्वस्थ लग रहे हैं। आपको मेरे साथ चिकित्सक के पास चलना ही होगा '' मैंने विनम्रता से आग्रहपूर्वक कहा।

मुझे इस प्रकार शलभ जी से बातें करते देख आसपास के लोग मुड़–मुड़ कर हमें देखने लगे। विशेषकर आसपास बैठे भिखारियों के नेत्रों में विस्मय के भाव देखने योग्य थे। उन्हें इस बात का आभास तक न होगा कि उनके बीच एक विद्वान–चिंतक व्यक्ति बैठा है। मेरे साथ चिकित्सक के पास चलने के लिए शलभ जी किसी भी प्रकार तैयार न हुए। मैं विवश था। उनकी आर्थिक सहायता करने हेतु मैंने अपनी जेब में हाथ डाला। इस समय मेरे पास अधिक पैसे न थे। फिर भी जितना कुछ मेरे पास था मैंने शलभ जी को देने के लिए

जेब से निकाल लिए। शलभ जी ने पैसे लेने से भी मना कर दिया। अत्यन्त आग्रह के बाद किसी प्रकार मैं शलभ जी को पैसे दे पाया।

मन में यह निश्चय कर मैं घर वापस आया कि कल मैं पुनः मन्दिर आऊँगा तथा शलभ जी की कुछ और आर्थिक सहायता करूँगा। कम से कम प्रति माह इस प्रकार से उनकी आर्थिक सहायता करूँगा कि उन्हें मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ कर भिक्षाटन न करना पड़े। मन में यह दृढ़ निश्चय कर मैं घर की ओर अपनी गाड़ी बढा़ने लगा। गाड़ी चलाते समय उनकी अर्थिक मदद के बारे में सोच कर मेरे हृदय की पीड़ा कुछ कम हो रही थी। मैं सन्तुष्टि का अनुभव कर रहा था।

दूसरे दिन ठीक उसी समय मैं मन्दिर पहुँच गया जिस समय कल शलभ जी मुझे मिले थे। मैं मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा था, तथा दोनों ओर बैठे भिखारियों में शलभ जी को ढूँढता जा रहा था। ये क्या ? मैं मन्दिर के छोर की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच गया, किन्तु शलभ जी नहीं मिले। मैं पुनः हड़बड़ाहट में नीचे की ओर भागा। प्रत्येक भिखारी के चेहरे को ध्यान से देख–देख कर शलभ जी को ढूँढने का प्रयत्न करते हुए नीचे उतरने लगा। मेरे अन्दर व्याकुलता भरने लगी। मैं स्वंय को हताश व अत्यन्त थका हुआ अनुभव करने लगा तथा पीपल के नीचे चबूतरे पर जा कर बैठ गया।

''अब क्या करूँ? कैसे ढूँढू उन्हें? मुझे उनके रहने के ठिकाने का पता तक ज्ञात नही। वो कहाँ रहते हैं? आज क्यों नही आये? कहीं शलभ जी अस्वस्थ तो नही हो गये..?'' मन में अनेक प्रश्न, अनेक शंकाये जन्म लेने लगीं। उनके स्वास्थ्य को ले कर चिन्ता उत्पन्न होने लगी। मैं चबूतरे से उठ कर पुनः मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। पुनः उसी स्थान पर पहुँच गया जहाँ कल शलभ जी मिले थे। वहाँ रुककर मैंने एक अधेड़ उम्र के भिखारी से पूछा, ''भईया, कल यहाँ जो आपके साथ बैठे थे, उनके बारे में क्या आप बता सकते हैं कि वो आज क्यों नही आये ?''

''कौन...? कौन कल बैठा था यहाँ ? यहाँ बैठने वालों का कोई निश्चित ठौर होता है क्या ? आज यहाँ कल कहीं और....।'' बड़े ही दार्शनिक अन्दाज में बोला वो भिखारी।

''हाँ.....हाँ....आप की बात सही है। फिर भी एक वृद्ध व्यक्ति कल यहाँ बैठे थे। वो कुछ अस्वस्थ भी थे, आज यहाँ नही दिख रहे हैं। '' उसकी बात को अन्यथा न लेते हुए मैंने पुनः पूछा।

सहसा उसे कुछ याद आया। उसने मस्तिष्क पर ज़ोर डालते हुए कहा, ''हाँ.....वो..? वो तो प्रतिदिन इसी मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठते हैं। कहीं और नहीं जाते। अधिक चल फिर नहीं सकते ना ?'' उसने इधर–उधर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा, ''यहीं कहीं होंगे।''

''साहब! वो आज नही आये हैं।'' आशा भरी दृष्टि से मुझे अपनी ओर देखते हुए पा कर उसने कहा।

''वो कहाँ रहते हैं कुछ बता सकेगे आप ?'' मैंने उससे कहा।

''आपके सगे–सम्बन्धी लगते हैं क्या ?'' मेरी व्याकुलता देखकर वह बोल पड़ा।

''नहीं.....उससे भी बढ़कर।'' उसकी बातें सुनकर मैं सकपका गया था। स्वय ंको संयत करते हुए मैंने कहा।

''उनके बारे में अधिक तो नहीं जानता, किन्तु इतना जानता हूँ कि एक रिक्शे वाला प्रतिदिन उन्हें मन्दिर की सीढ़ियों तक छोड़ कर चला जाता था। शाम का धुँधलका गहराते ही वही रिक्शे वाला उन्हें लेने आ जाता था। उनकी बातों से लगता था कि वो रिक्शे वाले के साथ ही कहीं रहते हैं।'' कहकर वो चुप हो गया।

मैं निराश होकर चारों ओर यूँ ही देखता रहा। तत्पश्चात् वहाँ से चला आया। मार्ग में गाड़ी चलाते–चलाते मेरे नेत्र बरबस नम हो जा रहे थे। उस दिन के बाद भी शलभ जी की तलाश मुझे कई बार मन्दिर तक लायी, किन्तु शलभ जी नहीं मिले। उनके बारे में मैं बस इतना ही पता कर पाया कि वो एक रिक्शे वाले के साथ किसी झुग्गी में रहते थे। उनके साथ क्या हुआ..? जीवन ने किस प्रकार और कब अपना रूप बदला कि उन्हें इस स्थिति में आना पड़ा? कौन–सी घटनायें थीं..? उनकी इस दशा का उत्तरदायी कौन है ?...आदि अनेक प्रश्न मन में अब भी उठते हैं। अन्तिम बार मन्दिर की सीढ़ियों पर दिखे मेरे सर्वप्रिय लेखक की स्मृतियाँ गाहे–बगाहे मेरे नेत्रों को नम कर देती हैं। सुप्रसिद्ध लेखक....विचारक....विद्वान शलभ जी की विवशतायें क्या रही होंगी...? प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं।

कहानी

काली

महेश शर्मा
224 सिल्वर हिल कालोनी, धार, मध्य प्रदेश
mahesh.k111555@gmail.com

जीवन के विभिन्न रोचकतापूर्ण घटनाओं में आश्चर्य का, रोमांच का, रहस्य का या अचानक होने वाली घटनाओं का बड़ा आकर्षण होता है। कुछ लोग इसके लिए निकल पड़ते हैं अनजान रास्तों पर घूमने फिरने और सामान्य लोग ये सब खोजते हें कहानियों में, उपन्यासों में या फिल्मों में। लेकिन किसी मनुष्य का पूरा जीवन काल देखा जाए तो हम देखेंगे उसका बचपन उसकी विकसित होती मानसिकता उसकी इच्छा, उसकी महत्वाकांक्षाएं उसके प्रयास उसकी सफलता और असफलता यह सब मिलकर कितने ही रंग जीवन में भरती है, जिसमें रोमांच आश्चर्य आकस्मिक सफलता की खुशियां और असफलताओं का सदमा शामिल होता है। आज हम किसी बुजुर्ग मनुष्य का मूल्यांकन उसके थक चुके शरीर, चुक गए मष्तिष्क और अव्यवस्थित रहन सहन को देख कर करते हैं उसे अत्यंत सामान्य ढंग से लेते हैं तो हम उचित नही कर रहे होते हैं, क्योंकि उसके संपूर्ण जीवन काल पर गौर किया जाए 50 या 6० या 70 साल के जीवन में कितने

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उतार–चढ़ाव उसने देखे हें कितना ही श्रम कितने ही कठोर निर्णय लेते हुए सफलता और असफलता का स्वाद लेते हुए गुजारे हें तो हर व्यक्ति अपने आप में विलक्षण साबित होगा। ठीक ऐसी ही स्थिति में एडवोकेट सुंदर लाल भार्गव भी गुजर रहे थे। एक समय के प्रसिद्ध धाकड़ कहे जाने वाले एडवोकेट सुंदर लाल भार्गव अपने बड़े पुराने मकान के बैठक रूम में पुरानी लकड़ी की कुर्सी पर निर्विकार से बैठे अपने छोटे बेटे राकेश और बहू मधु की बात सुन रहे थे।

'अरे मधु यह बाबूजी को कैसे पुराने कपड़े पहना दिए ? आज लड़के वाले आ रहे हैं, जरा इनको कोई शानदार वाली चकपक वाली ड्रेस या कुर्ता पजामा पहनाओ, क्या मजाक है यार!'

'अरे अब तुम भी! बुजुर्ग लोग तो ऐसे ही कपड़े पहनते हैं, और फिर वह लोग शिनी को देखने आ रहे हैं बाबूजी को नहीं।'

'प्लीज तुम बाबूजी को दूसरे कपड़े पहनाओ।'

दो दिन से घर को व्यवस्थित करने में लगी परेशान मधु चिल्लाई– 'कालीबाई! ओ कालीबाई!! कहां मर गई, बाबूजी के दूसरे कपड़े लेकर आ!'

मधु से ज्यादा परेशान लगातार साफ–सफाई में व्यस्त कालीबाई ने बाबूजी के सारे पांच–सात जोडी़ कपड़े लाकर हाल में उनके सामने पटक दिए– 'यह लो! मैं तो सबसे बढ़िया वाला ही ढूंढ कर लाई थी।'

राकेश ने सभी कपड़ों पर नजर डाली। सभी पुराने हो चले थे। धुलाई बेहतर नहीं थी और प्रेस तो थी ही नहीं! प्राइवेट कंपनी में अकाउंटेंट पोस्ट पर काम करते हुए राकेश भार्गव जिसकी बेटी शिनी जिसने एमबीए किया है, उसको एक प्रतिष्ठित परिवार देखने के लिए आ रहा है और यह बाबूजी पुराने कपड़े पहन कर बैठे हैं। राकेश ने सोचा मेहमान आने में अभी दो घंटे की देर है आधे घंटे में ही रेडीमेड कपड़े लाये जा सकते हैं।

'मैं अभी बाजार से बाबुजी के कपडे लेकर आता हूँ।'

'पागल तो नहीं हो गए तुम! अब दो घंटे के लिए नए कपड़े लाओगे ? ऐसे पैसे उड़ा रहे हो ? बाबूजी के पास पर्याप्त कपड़े हैं। इससे ज्यादा की जरूरत भी नहीं पड़ती है और आजकल बाबूजी कहीं बाहर आते जाते भी नहीं।'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'तुम चुप रहो! मैं आता हूँ। और हाँ...।' अचानक राकेश की नजर कालीबाई पर पड़ी जो एक पुरानी–सी मैली कुचैली साड़ी पहने फर्श पर पोछा लगा रही थी। 'कालीबाई, तुम्हारे घर में इससे भी बेकार कोई साड़ी नहीं है ?'

काली चौंकी। उसकी नजर अपनी साड़ी पर गई। उसे हँसी आ गई– 'दो साल पहले दिवाली पर बीबी जी ने ही दी थी ये साड़ी!'

'मधु, इसको तुम एक पुरानी अच्छी सी साड़ी निकाल कर दो।'

'अरे, तुम पागल हो राकेश!'

'निकाल रही हो या इसके लिए भी मैं बाजार से नई साड़ी लेकर आऊं ?'

'ओहो! अब तो मैं निकाल देती हूँ कोई साड़ी। तुम बाजार जा रहे हो नाश्ता भी लेते ही आना।

'हम्म! कुल कितने लोग हो जाएंगे ?'

'10–12 तो हो ही जाएंगे। बड़े भैया–भाभी भी आ रहे हैं और मेहमान भी पांच–सात होंगे।'

'ठीक है, मैं जाता हूँ।' राकेश निकल चुका था।

दो दिन से अस्त–व्यस्त हो रहा था पूरा परिवार। बेटी को देखने मेहमान आ रहे थे लड़के सहित। भार्गव परिवार का पुराना–सा लंबा चौड़ा मकान बड़ी मेहनत से सजाया जा रहा था। इन दो दिनों में मधु कम से कम छह बार झुंझला चुकी थी राकेश के ऊपर। 'कब से कह रही हूँ, कंपनी के फ्लैट में शिफ्ट हो जाएं सुनते ही नहीं इतना बड़ा लम्बा चौड़ा यह पुराना महलनुमा घर तुमसे छूटता ही नहीं। ना साफ करते बनता है, ना सुहावना लगता है। अब क्या मेहमानों को भी पुराने लेट बाथ में ले जाओगे ?'

'प्लीज मधु चुप हो जाओ एक–दो महीने लगेंगे फ्लैट अलॉट होने में, अभी मेहमानों की बात करो।'

'मेरी तो किस्मत ही ऐसी है। दोनों बड़े भैया और भाभी तो चले गए अपनी अपनी जगह शानदार शहरों में अच्छे मकानों में रहते हैं। मेरे पल्ले यह सब पुराना पुराना पड़ा है पुराना मकान, पुराना फर्नीचर, पुराना कबाड़ और पुराना...!' कहते–कहते अचानक मधु की नजर बाबूजी की ओर उठी और बाबूजी जो बड़ी देर से निर्विकार भाव से बैठे थे, वह भी न जाने क्यों अचानक चेहरा उठाकर मधु की

ओर देखने लगे। दोनों ने न कुछ कहा, न व्यक्त किया। लेकिन बिना कहे भी बहुत कुछ कह दिया। अनकहा मौन कई बार कही जाने वाली बातों से ज्यादा प्रखर प्रहार करता है।

तभी पीछे से काली बाई का ठहाका गूंजा– 'और बीवी जी मैं भी तो पुरानी नौकरानी आपके पल्ले पड़ी।'

'चुप कर! यह फर्श हो गया हो तो लेट बाथ में एक बाल्टी पानी और डाल दे।'

'वह साड़ी ?'

'हाँ हाँ... निकाल रही हूँ महारानी!'

कालीबाई फिर हँसी– 'आज तो उड़ के लगी... बाबूजी की भी और मेरी भी।'

'क्यों ?'

'अरे, बिना मांगे बिना त्योहार के मेरी भी साड़ी और बाबू जी का भी कुर्ता पजामा आ गया।' यह कहती काली लेट बाथ साफ करने चली गई।

कुछ ही देर में राकेश मिठाई ले आया। इसी बीच बड़े भाई मधुरेश और संगीता भी आ चुके थे। शिनी तैयार हो रही थी। कुछ क्षणों में कालीबाई दूसरी पुरानी साड़ी पहने लहक रही थी, और बाबूजी को नया कुर्ता–पजामा पहना रही थी।

बाबूजी कुर्ता पजामा बड़े ही विरक्त भाव से पहन रहे थे। वह समझ रहे थे कि यह कुर्ता–पजामा, यह नए कपड़े उनकी आवश्यकता के लिए नहीं... बल्कि आने वाले मेहमानों के सामने उन्हें अच्छा प्रस्तुत करने के लिए थे। वरना तो वे रोजाना पुराने कपड़े पहनकर ही अपना समय निकाल रहे थे। शायद पिछली से पिछली बार दीपावली पर नया कुर्ता–पजामा आया था उनके लिए। उन्हें कोई शौक भी नहीं था और जरूरत भी नहीं पड़ती थी। पिछले चार–पांच सालों से उनका बाहर आना–जाना लगभग बंद था। दिन भर घर में हॉल में पुरानी कुर्सी और पलंग पर बैठे अपना समय निकालते थे। अपनी आदत के अनुसार उन्होंने भूतकाल में जाने की तैयारी की ही थी कि तभी खबर लगी कि मेहमान बाहर आ चुके हैं। अपने विचारों के जाल से बाहर आये सुन्दर लाल जी और चेहरे को थोड़ा खुशनुमा बनाते हुए प्रस्तुत होने को तैयार हो गए। मेहमानों की आवभगत की

गई। लड़की दिखाई गई। नाश्ता पानी किया गया। और मेहमान कुछ सकारात्मक संकेत देते हुए लौट गए। घर वाले सभी प्रसन्न थे।

'मधु, अब खाने का क्या होगा ?'

'अब खाना घर पर नहीं बन पायेगा। होटल चलते हैं।'

'फिर बाबूजी का खाना ?'

'उनका पार्सल पैक करवा लाएंगे।'

'बाबू जी आपका खाना हम ला रहे हैं। अभी हमने नाश्ता किया ही है।'

'ठीक है बेटा!' अपनी आराम कुर्सी में पसरते हुए बाबूजी ने कोई जिज्ञासा, आशा, निराशा नहीं दर्शाई।

राकेश और मधु अपनी बेटी और मेहमानों के साथ खाना खाने निकल चुके थे।

घर के सभी कामों को समेटती हुई काली बाबूजी को देख देखकर हर्षित हो रही थी– 'आज तो जँच रहे हो बाबू जी सुपर डुपर लग रहे हो नए कपड़ों में।'

'तू भी तो अच्छी लग रही है काली!' बाबूजी के चेहरे पर एक स्मित हास्य झलका और जवाब में कालीबाई के काले चेहरे पर लाज भरी शर्म की लाली छलक पड़ी।

'क्या करें बाबूजी! मालिक लोगों की मेहरबानी से हम भी पहन लेते हैं। आप आराम करें, अब मैं जाती हूँ।'

'थोड़ी देर बाद जाना काली। मुझे नींद आने तक रुक जाओ।'

'अरे, मेरा बच्चे भूखे हैं बाबूजी! उनको भी तो खाना बनाके खिलाना है।'

'फिर भी आधे घंटे बाद चली जाना तू, अभी रुक जा!' बाबूजी के स्वर में करुणा और अपनत्व के अधिकार से उपजा निवेदन था।

'हो बाबूजी मे रुक जाती। पर तुम मुझसे एसा न बोला करो मैं कमजोर पड़ जाती।' काली के स्वर में अपनत्व लग रहा था।

घर के कुछ काम और निपटाती काली की नजर बीच–बीच में अर्ध निंद्रित होते बाबूजी पर पड़ रही थी तभी बाबूजी की आंखें खुली उन्हें लगा कि उन्हें भूख लग रही है।

'अरे काली, ये लोग कब तक आएंगे ?'

'बाबूजी इना को दो–तीन घंटे से कम नहीं लगेंगे। तुम्हारी भूख जाग गई क्या ?

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'हाँ मुझे भूख लगी है ?'

'ओ बाबा इनके आते–आते तो तुम्हारा भूख तूफान बन जाएगा। मैं कुछ देखती किचन में।'

काली ने कुछ टटोला किचन में। कल शाम की दो–तीन ठंडी रोटी मिली। उन्हें ही आचार–चटनी के साथ द कर पानी का गिलास रखकर काली चली गई।

बिना किसी स्वाद या दिलचस्पी के सिर्फ शरीर की भूख की मांग के आधार पर एडवोकेट सुंदरलाल ठंडी रोटी चबाते रहे और धीमे–धीमे रोटियां चबाते हुए भूतकाल में उतर गए–

एक वक्त था एडवोकेट सुंदरलाल भार्गव का माना हुआ घर था। तीन बेटे एक बेटी और सुंदर सुशील पत्नी। मजबूत आर्थिक स्थिति खुशहाल परिवार .लेकिन कहा गया है कि नियति ने सभी को सुख और दुख का बंटवारा किया है। कहीं कम कहीं ज्यादा सुख और दुख दोनों ही दिए गए हैं और कई बार इस तरह से होता है कि जो अपने जीवन के पूर्वार्ध में सुख पा लेता है, वह बाद में तकलीफ में रहता है और इसी तरह जो अपने प्रारंभिक काल में ज्यादा तकलीफ उठाता है उसका बाद का जीवन सुख में बिताता है। हालांकि ये कोई सर्वमान्य सिद्धांत नहीं है। इसके विपरीत भी होता है, लेकिन अक्सर यह देखा गया है।

अपनी उम्र के 40 से 50 वें साल में सुंदरलाल जी के सौभाग्य का डंका जबरदस्त बजता था। वकालत अच्छी चलती थी। तीनों बेटों को अच्छा पढ़ाया, नौकरी लगी, शादियां हो गईं। बेटी की भी शादी राजस्थान में कर दी गई। बड़ा बेटा सिंचाई विभाग में ऑफिसर बन गय। दूसरे बेटे ने शिक्षा विभाग में अधिकारी पद की नौकरी सम्हाल ली। तीसरा बेटा एक बड़ी कंपनी के लोकल ऑफिस में ही अकाउंटेंट पद पर जम गया। तीनों के दो–दो बच्चे भी हो चुके थे। सुन्दरलाल जी ने अपने बडे से लम्बे–चौड़े पुराने ढंग के मकान को बेहतर बना लिया था। और तीनों बेटों के लिए शहर में एक एक प्लाट भी खरीद लिया था। यानी सब कुछ जीवन में पा चुके थे, लेकिन जिस क्रम से पाया था उसी क्रम से खोने का दौर भी शुरू हुआ... और शुरुआत हुई थी पत्नी उर्मिला की बीमारी से। चार–छह दिन के समझ ना आने वाले तेज बुखार के बाद लकवे का अटेक आया। बिस्तर पर पड़ गई उर्मिला देवी। कुछ तो नौकरानी काली की सेवा और उनका

स्वयं का लगाव उर्मिला को जैसे–तैसे जीवित रखे हुए था। पत्नी की बीमारी से वकालत पर ध्यान कम हुआ वकालत कमजोर हुई। नई पीढ़ी के नए स्मार्ट वकील बाजार पर कब्जा करने लगे। दोनों बड़े बेटे अपनी–अपनी नौकरियों पर दूर चले गए। जो साल में एक बार या दो बार एक–दो दिन के लिए आते थे। छोटे बेटे की नौकरी लोकल में ही होने से अनचाहे ही माँ–बाप को सम्हालने की जवाबदारी राकेश और मधु पर आ गई। अब प्राइवेट जॉब होने से बेटा राकेश अत्यधिक व्यस्त रहता और मधु लंबे–चौड़े घर के कामकाज में अति व्यस्त रहती चिड़–चिड़ करती। मन मारकर सास–ससुर को सम्हाल रही थी। सम्हाल भी क्या रही थी, नौकारानी काली को लगा रखा था सासु जी की सारी सेवा के लिए। इस बीच सुन्दरलाल जी को घुटनों के जोड़ों में अचानक बहुत तेज दर्द रहने लगा कहीं आना–जाना मुश्किल होता गया। सारे दिन घर पर ही निकालते अपने घुटनों के दर्द से परेशान स्वभाव में चिड़चिड़ापन लाए हुए एक समय के सफल एडवोकेट सुंदरलाल भार्गव एक कमजोर उदास निराशावादी बुजुर्ग व्यक्ति के रूप में बदलते जा रहे थे। इन सब विपरीत स्थितियों में जो थोड़ा सा सुकून था जो संतोष की एक किरण थी जो ठंडी हवा का झोंका था वह था काली। जी हाँ कालीबाई! घर की 10 साल पुरानी नौकरानी कालीबाई से वकील साहब का रिश्ता या कालीबाई का इस घर के लिए समर्पण भाव का एक कारण 10–12 साल पहले बिजली विभाग में काम करते हुए काली के पति की मौत हो गई थी। कुछ कारणों से विभाग से उसके सारे क्लेम अटक रहे थे, तब वकील साहब ने बिना कोई फीस लिए हुए पूरी दिलचस्पी से कालीबाई का केस हैंडल किया था और उसे उसका क्लेम दिलवाया था और तभी काम की तलाश में भटकती कालीबाई को अपने घर पर फुल टाइम नौकरानी के रूप में रख लिया गया था। यह उसी समय की बात है जब पत्नी पर लकवा का अटैक आया था। भावुक हो गए थे एडवोकेट सुंदरलाल काली बाई को काम पर रखते हुए उसे निवेदन के रूप में आदेश किया था कि तू घर के सारे काम बाद में करना पर अपनी मालकिन की बात पहले सुनना और मानना।

कालीबाई ने वकील साहब के आदेशनुमा निवेदन को सर आंखों पर रखा और जी–जान से उर्मिला देवी की सेवा सुशुश्रा की। रोजाना उर्मिला देवी को लेट बाथ तक ले जाना नहलाना कपड़े

बदलना और दिन भर के घर के भी अन्य सारे आवश्यक कार्य बिना शिकवा–शिकायत के करते रहना। कई बार बहू मधु चिढ़कर चिल्लाकर उसे दूसरे काम बताती, लेकिन वह कुशलता से उर्मिला देवी के काम पहले ही निपटाती थी।

वकील साहब का दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। लकवा ग्रस्त उर्मिला देवी ने पूरे आठ साल परेशान रहते और परेशान करते हुए बिताये। और एक दिन उनका भी जीवनकाल पूरा हो गया। अन्य सुविधाएं जैसे सुन्दरलाल जी से धीरे–धीरे दूर होती चली गई थी वैसे ही उर्मिला देवी भी उनको छोड़ कर चली गई। कहते हैं ना कि अभागे आदमी की पत्नी बुढापे में मरती है! लेकिन हाँ, जाते–जाते जो एक बात उर्मिला देवी कालीबाई को कह गई, उसे शायद अनपढ़ कमजोर और किसी निम्न जाति की कालीबाई के अलावा कोई नहीं जानता! क्या कहा था उर्मिला देवी ने काली को ? वही जो कभी एडवोकेट सुंदरलाल ने कालीबाई को उर्मिला देवी के लिए कहा था– 'काली, आज मैं एक बात कह रही हूँ, और कसम दे रही हूँ तुझे कि इस बात को मानना पड़ेगा।'

काली बोली– 'तुम हुकुम करो मालकिन, मैं जान भी दे देगी।'

'नहीं, जान नहीं! जिस तरह से तूने पिछले आठ सालों से मेरा ध्यान रखा है। बस, अब तू इनका ध्यान रखना! इनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखना और कम से कम दुख पहुंचे यह मेरी जवाबदारी थी, जो मैं तुझे सोंप रही हूँ!'

मान गई काली। इस अनपढ़ गरीब नौकरानी ने अपने दिल में इस प्यार और ममत्व की देवी के आदेश को ईश्वर का आदेश माना और उसके बाद बाबू जी की सारी जरूरतों की जवाबदारी कालीबाई पर आ गई। व्यस्त रहने वाला बेटा राकेश, काम में उलझी चिड़चिड़ी हो रही बहू को यह बात बड़ी अनुकूल लगी कि बाबूजी के किसी काम का उस पर भार नहीं पड़ता है, सारा काम नौकरानी कालीबाई सम्हाल लेती है।

अचानक आराम कुर्सी पर सोए एडवोकेट सुंदरलाल की आँखें खुली। बेटे–बहू आ चुके थे। बड़े भाई और भाभी होटल से ही वापस रवाना हो गए थे।

'चलो बाबूजी, बैठ जाओ! खाना खा लो!' राकेश ने लाया हुआ पार्सल खोलने का उपक्रम किया।

'बेटा, मैं शाम को ही खाऊंगा, मैंने खाना खा लिया है।'

'खाना कहां से खा लिया आपने ?'

'नहीं, वह काली कल की रोटियां जो पड़ी थी, वह खिला गई थी मुझे।'

'अरे सॉरी बाबू जी, हमें देर हो गई। बड़े भैया को छोड़ने रेलवे स्टेशन जाना पड़ा।'

मधु एक क्षण को चौंकी– यह काली भी, घर की मालकिन जैसी बनती है, परबारे निर्णय लेती है। पर मुझे क्या करना, ठीक है मेरा टेंशन कम हुआ।

समय ऐसे ही बीतता रहा। सुंदर लाल जी के दोनों बड़े बेटे अपनी शानदार नौकरी में व्यस्त। तीसरा बेटा राकेश बड़ी तेजी से फ्लैट के एलॉटमेंट में जुटा हुआ नौकरी में व्यस्त। बहु मधु लंबे चौड़े मकान की साफ–सफाई और कामकाज में चिढ़ती हुई व्यस्त। और इन सब के बीच सुंदरलाल जी पूरी रात और आधा दिन लकड़ी के पलंग पर तकिया के सहारे लेटे हुए और आधा दिन लकड़ी की कुर्सी पर बैठे–बैठे कुछ सोचते अखबार के पन्ने पलटते हुए दिन बिता रहे थे। और कालीबाई दिन भर मधु बीवी जी के बताए कामों करती हुई बड़े सारे घर की साफ सफाई करती हुई यह कोशिश करती कि बाबूजी का कोई भी काम या उनकी कोई भी आवश्यकता हो उसमें चूक नहीं हो, और बाबूजी दुखी ना हो।

दो–तीन महीने बीत चुके थे और अंततः राकेश सफल हुआ, कंपनी के परिसर में एक बेडरूम वाला फ्लैट पाने से मधु बहुत खुश थी। क्योंकि अब उसे छोटे से साफ–सुथरे स्वच्छ फ्लैट में रहने का मौका मिलेगा। इतने लंबे–चौड़े मकान की साफ–सफाई से छुटकारा मिलेगा। राकेश कुछ असमंजस में था। वहां गए तो बाबूजी का क्या करेंगे। एक बैडरूम के फ्लैट में कैसे रखेंगे बाबू जी को। इधर सुन्दरलाल जी सोच विचार में थे कि अब क्या होगा भरी जवानी से लेकर 72 साल की उम्र तक जिस मकान में जिस परिवेश में समय गुजरा, दिन रात गुजरे, परिवार की सारी प्रगति सारे परिवर्तन देखें, अब उसे छोड़ कर पता नहीं कहां जाना पड़ेगा ? और कालीबाई चिंतित थी सिर्फ और सिर्फ इस बात के लिए कि अब मालिक लोग

बाबूजी को अपने फ्लैट में ले जायेंगे, जो शहर से उसके मोहल्ले से बहुत दूर है, वह नहीं जा पाएगी तो बाबूजी का क्या होगा ? उनकी सुबह की चाय, उनके नहाने का गरम पानी, उनके कपड़े धोना–बदलना, उनको समय पर दवाइयां देना, पढ़ने के लिए अखबार और किताबें देना और भी कई काम दिन भर के जो खुद ही करती थी... वो वहां कौन करेगा!

काली बाई कौन थी सुंदर लाल जी की ? पत्नी नहीं थी, उनकी बेटी नहीं थी, उनकी बहन भी नहीं थी, उनकी बहू भी नहीं थी! फिर कौन थी उसे, क्यों चिंता थी सुंदर लाल जी की! शायद दुनिया में यही एक रिश्ता है जो अनाम है, अनजान है, जिसे कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है! लेकिन पूरे सशक्त रूप में उपस्थित है यह रिश्ता। तो यह सभी पात्र अभी दर्शक हैं, किसी के मन में कोई निश्चय नहीं था कि क्या करना है ? क्या होगा ?

अंततः वह दिन आया जब नए फ्लैट में जाने का मुहूर्त निकाला गया दो दिन बाद का। रात में दोनों पति–पत्नी में चर्चा हुई कि क्या करना है ? बाबू जी को वहां पर ले चलें ? मधु का कहना था कि 'जब एक बेडरूम का फ्लैट है तो बाबूजी को कहां सुलायेंगे ? उनके कपड़े, उनकी दवाई–दारू, उनके फोकट के सामान क्या बैठक रूम में रखोगे! और हाँ, जब हम लोग पिछले चार–पांच साल से बाबूजी को रख रहे हैं, सहन कर रहे हैं, तो क्या अब दोनों बड़े भैया की ड्यूटी नहीं बनती कि वह बाबूजी को यहां से ले जाएं! उनके पास रखें, आप फोन लगाओ, उनको सारी बात बताओ और बोलो कि ले जाएं बाबूजी को रखे अपने पास!'

राकेश जानता था कि दोनों में से कोई भी नहीं ले जाने वाला बाबूजी को अपने पास। फिर भी उसने फोन लगाकर दोनों भाइयों को सारी स्थिति बताई और राय ली कि क्या करना चाहिए! बड़े भैया का कहना था कि 'हम दोनों सुबह 9:00 बजे चले जाते हैं। बच्चे स्कूल, कॉलेज, ट्यूशन चले जाते हैं। घर में कोई नहीं रहता तो बाबूजी अकेले कैसे रह पाएंगे ? कुछ ऐसा करो कि बाबू जी वहीं पर एडजस्ट हो जाएं। खर्चे की चिंता मत करो, जो लगेगा मैं भी दूंगा।' राकेश ने मझले भाई को फोन लगाया, उसे समस्या बताई। मझले का स्पष्ट कहना था कि 'मेरा फ्लैट भी बहुत छोटा है। मैं यहां बाबूजी को कैसे रख पाऊंगा। तुम ही अपने नए फ्लैट में ले जाओ या ऐसा कुछ करो

कि बाबू जी यहीं पुराने मकान में ही रहें, और तुम रोजाना उनके हाल–चाल जानते रहो, उनका ध्यान रखो।'

इस तरह सब की राय जानने के बाद दोनों पति–पत्नी फिर रात को बैठे। मधु ने फिर मुद्दा साफ किया कि 'घर के सारे काम करने के अलावा बाबूजी की सुबह से शाम तक की सारी देख–रेख मैं नहीं कर सकती। यहां सब इसलिए हो रहा था कि कालीबाई थी। अब यदि कालीबाई वहां नहीं आती है तो कौन इनके कपड़े धोएगा, नहलाएगा, कपड़े बदलेगा, दवाइयों का ध्यान रखेगा और काल बाई को अब हम वहां पर नौकरी नहीं दे सकते। इतनी दूर वो आ नहीं सकती।' तभी मधु को एक उपाय सूझा– 'सुनो, हम ऐसा करें– बाबूजी को यहीं रहने दे और काली बाबूजी का ध्यान रखे! रोटी बना दे। कई बार मैंने कालीबाई से किचन में भी हेल्प ली है। बहुत एक्सपर्ट है वह, खाना भी बना सकती है। अभी भी हमारे यहां रहते हुए बाबूजी का सारा ध्यान काली ही रखती है तो बाद में भी रखेगी और तुम या मैं रोजाना एक बार या दो बार आते रहेंगे और बाबूजी का ध्यान रखेंगे। वैसे भी हम बाबूजी के साथ दिन भर तो रहते नहीं हैं और ना ही रात में सोते हैं तो हम वहां रहते हुए भी बाबूजी का ध्यान रख लेंगे। और वैसे तो दोनों बड़े भैया और भाभी ने सोचना चाहिए हम बरसों से बाबूजी का ध्यान रख रहे हैं, अब उनकी ड्यूटी बनती है कि वह बाबूजी को ले जायें, अपने साथ रखें! वह भी इनके बेटे हैं, उनका भी कर्तव्य है कि बाप की सेवा करें!'

राकेश मधु के इस प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार करने लगा। यद्यपि यह स्पष्ट था कि उनकी इस कार्रवाई से जाति समाज के लोग उनकी आलोचना करेंगे। उन्हें दुष्ट बेटा–बहू समझेंगे, लेकिन उनके कहने के डर से कब तक तकलीफ उठाई जाये ?

'यार मधु, मैं कैसे कह पाऊंगा बाबूजी को कि वो यहीं रहें कालीबाई के भरोसे! मुझसे ये नहीं हो पायेगा।'

'तो ठीक है, तुम रहने दो मैं कोई तरीका लगाती हूँ, बात करती हूँ बाबूजी से।' मधु सोचने लगी क्या तरीका हो सकता है, सांप भी मर जाए लाठी भी ना टूटे।

कालीबाई और बाबूजी भी समान रूप से इस उलझन से चिंतित थे, लेकिन इसके हल का कोई उपाय नहीं जानते थे। वे केवल दर्शक दीर्घा में थे। वे यह इंतजार कर रहे थे कि अब आगे

क्या होगा वैसे यह जरूर था कि सुंदर लाल जी 72 साल का निराश कमजोर निर्विकार इच्छाविहीन बुजुर्ग यह जरूर इच्छा रखता था कि अब इस उम्र में किसी अनजानी जगह पर जाने की बजाय यदि मैं इस घर में ही रह सकूं, और मेरे बेटे–बहु, मेरे पोते–नाती मेरे साथ रहें! और हाँ, कालीबाई भी साथ में रहे तो बस मेरे लिए यही बेहतर होगा।

कालीबाई, जो सिर्फ एक नौकरानी थी। काली–कलूटी–सी, कमजोर–सी निम्न जाति की विधवा महिला। इस परिवार से कोई खून का रिश्ता नहीं, लेकिन उसके मन में यह इच्छा जबरदस्त ढंग से थी कि जब तक हो सके बाबू जी की सेवा कर सकूं! बड़ी मालकिन को दिया हुआ आश्वासन/वादा पूरा कर सकूं और इस बूढ़े महान व्यक्ति का अंतिम रूप से शेष रहा जीवन सुखी कर सकूं।

दूसरे दिन दोपहर में मधु ने पिताजी को बताया कि 'एक दो दिन में हम अपने नए फ्लैट में रहने चल रहे हैं। वहां सब कुछ अच्छा है, बस मकान छोटा है। सिंगल बेडरूम का है। आपको हॉल में ही सोना बैठना पड़ेगा।'

एक जिज्ञासा से सुन्दरलाल जी ने बहु कि और देखा, और पूछ बैठे– 'और काली ?'

'काली वहां थोड़े ही आ पायेगी बाबूजी, बहुत दूर है वो कालोनी। मैं आपका ध्यान रखने कि कोशिश करूंगी, जैसा भी बन पड़ेगा। पर हाँ, अपना फ्लैट तीसरे माले पर है। आप रोजाना नीचे नहीं उतर सकोगे, बाहर नहीं घूम सकोगे, आपको दिन भर हॉल में ही बैठना पड़ेगा।'

सुन्दरलाल जी स्तब्ध थे अपना भविष्य जानकर! मधु का तीर सही निशाने पर लगा। मिनटों में सब कुछ सोचकर पिता सुंदरलाल ने नहीं, बल्कि एडवोकेट सुंदरलाल ने जवाब दिया– 'बेटा, इस उम्र में मेरा जरा भी मन नहीं है कि मैं अपने मकान को छोड़कर कहीं जाऊं। यहां कोई भी मिलने नहीं आता है, लेकिन मुझे लगता है कि मैं अपने घर में हूँ। वहां अनजानी बस्ती में छोटे से फ्लैट में तीसरे माले पर तुम मुझे रखोगे, कालीबाई भी वहां नहीं होगी तो मैं जी नहीं पाऊंगा।'

मधु को तो बिना मांगे ही ऑक्सीजन का सिलेंडर मिला। गंभीर समस्या का सरल निदान मिला। उसने बड़ी चिंता जताते हुए

कहा– 'बाबूजी, आपकी इच्छा यहाँ रहने की है, लेकिन हम कैसे आपको अकेले एक नौकरानी के भरोसे छोड़ सकते हैं ? लोग क्या कहेंगे ? बड़े भाई साहब क्या कहेंगे ?'

'तुम किसी बात की परवाह मत करो बहु! मैं सबसे कह दूंगा कि में जिद करके यहाँ रुका हुँ। मुझ पर दया करो, मुझे यहीं रहने दो।'

'ऐसा है तो... तो हम जिद नहीं करेंग े आपकी सारी व्यवस्था कर देंगे। कालीबाई यहां पर रहेगी आप का ध्यान रखेगी। आप यहीं रहें, लेकिन भाई साहब को और सबको आपको कहना पडेगा।'
मधु खुश हो गई अपनी चालाकी से गंभीर समस्या का सरल निदान हो गया और अगले चार दिनों में एडवोकेट सुंदरलाल भार्गव के सबसे छोटे बेटे का सारा नया सामान पैक हो चुका था। पुरानी कुर्सियां, पुराना पलंग, पुराना फर्नीचर, पुराने कपड़े और पुराना बाप और पुरानी नौकरानी भी जो भी था... वह सब यही छोड़ा जा चुका था। यह नया परिवार अपने नए फ्लैट में नया जीवन प्रारंभ करने जा चुका था। हाँ, जाते–जाते राकेश ने किचन में खाने का सारा सामान भर दिया था। कालीबाई की तनखा कुछ बढ़ा दी गई थी, उन्हें निर्देश दिया गया था कि रोजाना दोनों समय का खाना भी उसे बनाना है, बाबूजी को जरा सी तकलीफ नहीं होना चाहिए। राकेश ने बड़े भावुक होकर कहा था मेरे पिताजी हैं, किसी भी बात की तकलीफ मत देना।

राकेश और मधु के नए फ्लैट मे शिफ्ट हो जाने के बाद लंबे चौड़े पुराने घर में अकेले रहते एडवोकेट सुंदरलाल भार्गव बहुत सुकून महसूस कर रहे थ े लेकिन इस सारे सुकून की गारंटी कालीबाई, एक कमजोर–सी, काली सांवली–सी, न जाने किस जाति की नौकरानी ही थी। और यह कालीबाई बहुत–बहुत प्रसन्न थी कि उसे अपना फर्ज निभाने का, अपनी जिम्मेदारी निभाने का, अपने एहसानों का कर्ज उतारने का अवसर मिला है। सुबह 7:00 बजे से यहाँ आ जाती। सुबह की चाय पिलाती 9:00 बजे तक सुबह का नाश्ता और खाना बनाकर 12:00 बजे अपने घर चली जाती। शाम को 4:00 बजे फिर आ जाती। शाम का खाना बना कर कई–कई समझाइशें देकर चली जाती।

एडवोकेट सुंदरलाल भार्गव अब किसी भौतिक समस्या से ग्रस्त नहीं थे, लेकिन मन आत्मा का विचार चक्र और भाव यह आदमी

की सबसे बड़ी दुश्मन है जो उसे कभी चौन से नहीं रहने देती। सुंदरलाल जी सोचते कि मैंने 25 साल की उम्र से लेकर 50 साल की उम्र तक जबरदस्त श्रम किया। मेहनत की योजनाएं बनाई तीन बच्चों को पैदा किया, पाला–पोषा पढ़ाया, नौकरी लगवाई और शादियां की। मैंने अपने जीवन के महत्वपूर्ण 25 साल जिन बच्चों पर खर्च किए वह बच्चे उनके 10 साल भी मेरे ऊपर खर्च करने को तैयार नहीं ? यह कैसा जीवन है ? कालीबाई है, मेरा ध्यान रखती है! लेकिन क्या मुझे अपने बच्चे याद नहीं आते हैं, क्या मुझे अपने पोते नाती याद नहीं आते, क्या मैं नहीं चाहता कि मैं घर का स्वयंभू मालिक रहूं! सब मेरे आस–पास डोलें, मुझसे पूछें, मेरी बात माने और मेरे अनुसार करें। दुनिया ने तो मुझे बेकार समझकर ठुकरा दिया, भुला दिया। पर घरवालों ने भी एक बेकार का सामान मान लिया, यह कैसे ? और फिर यह कालीबाई कौन है, क्या रिश्ता है मेरा इससे जो मुझे अभी भी बाबूजी की सम्मानजनक कुर्सी पर बिठाए रखती है, और मेरी हर आवश्यकता का ध्यान रखती है, मुझसे सम्मान से पेश आती है... क्यों ? सुंदरलाल जी को इन प्रश्नों का कभी कोई जवाब नहीं मिला। ऐसा नहीं था कि सुंदर लाल जी को अपने परिवार से मोह नहीं था। वह तो चाहते थे कि बेटे–बहू, नाती–पोते सब साथ में रहें और उनका ध्यान रखें। लेकिन वह समझ रहे थे कि धीरे–धीरे सब को भी विरक्ति हो चुकी है। बाहर जा चुके बड़े बेटे और बहू उनको रखना भी नहीं चाहते और उनके पास बहाना भी बहुत बढ़िया था कि बाबूजी को अच्छा नहीं लगता है। यहीं रहने वाले राकेश और मधु की मजबूरी थी, उनके पास अभी तक कोई बड़ा कारण नहीं था जो बाबूजी की जवाबदारी से मुक्त हो जाए। अब जैसे ही राकेश को कंपनी की तरफ से फ्लैट मिला कि उन दोनों के दिमाग में दो तीन अच्छे मजबूत कारण आ गए जिसके आधार पर बाबूजी से पीछा छुड़ाया जा सकता है। पहला कारण तीसरे माले पर मिला फ्लैट था, उसमें बाबूजी कैसे रहते ? उनका नीचे उतरना, चढ़ना बहुत मुश्किल होता। दूसरा फ्लैट इतनी दूर था कि वहां पर काली को काम के लिये नहीं रखा जा सकता। इस तरह सुंदरलाल जी का छोटे बेटे के साथ रहना भी असम्भव सा हो गया था।

मधु ने बडी चालाकी से शुरू में यह भी प्रस्ताव रखा कि कुछ दिनों तक बाबूजी को बड़े भैया या मझले भैया ने ले जाना चाहिए

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

और वहां पर अपने फ्लैट में रखना चाहिए। दोनों बड़े भाइयों और उनकी बहुओं ने इस तथ्य को इतनी कुशलता से कठिन बना दिया कि हम तो ले जा सकते हैं यदि बाबूजी वहाँ रह सके तो... ऊपरी तौर पर या लग रहा था कि इस समस्या का हल निकाल लिया गया है, लेकिन सभी जानते–समझते थे कि ये हल नहीं है।

एक बुजुर्ग व्यक्ति को किस प्रकार नौकरों के भरोसे छोड़कर जाने वाले पढ़े–लिखे संभ्रांत लोगों के व्यवहार को देखकर काली जैसी अनपढ़ औरत भी आश्चर्यचकित थी, लेकिन मन ही मन प्रफुल्लित भी थी कि उसे बाबू जी की सेवा करने का अवसर मिलेगा। बाबूजी एक गहरे अवसाद में डूबे थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि अच्छा हो रहा है या बुरा हो रहा है, किंतु मन में थोड़ा सा सुकून था कि वह अपने पुराने पुश्तैनी घर में बाहर के चौक में सरलता से घूम फिर के अपना बुडापा निकाल सकेंगे, और काली नाम का जो सुरक्षा अस्त्र ईश्वर द्वारा दिया गया है, वो तो है ही!

राकेश नियम से दो बार घर आता था। पांच–दस मिनट बाबूजी के पास बै कर बातें करता था और चला जाता था। सामान की कोई कमी हो तो वह भी देख लेता था। लेकिन धीरे–धीरे उसकी बाबूजी को देखने आने की आवृत्ति कम होती गई। अब वह दो बार की बजाय एक बार आता था, कभी कभी गैप भी हो जाता था। और बाहर रहने वाले दोनों भाई–भाभी और बच्चे उसी तरह साल में एक बार या दो बार आते। दो–चार घंटे बाबूजी के साथ बिताते और चले जाते।

बाबू जी कुछ बीमार भी रहने लगे थे। उनका समय थोड़ा मुश्किल से कटने लगा। उनकी इच्छा होती थी कि काली दिन भर घर पर ही रहे। बल्कि संभव हो तो रात को भी रहे। जो बात कर सके और अपनी सुरक्षाके प्रति भी आश्वस्त रह सकें। अचानक एक दिन ऐसा कुछ हुआ कि सुबह का खाना बनाकर 11:00 बजे काली जब वापस घर गई। उसकी तबीयत ठीक नहीं थी। कुछ बुखार–सा लग रहा था। और शाम के 6:00 भी बज गये, लेकिन काली नहीं आई। उस दिन राकेश का भी राउंड नहीं लगा। वह दिन और वह रात बाबूजी के लिए घोर लंबी काली रात निकली बेचैन हो गए। काली को क्या हुआ ? क्यों नहीं आई काली ? अब मेरा क्या होगा ? शाम को सुबह का बचा हुआ खाना जैसे–तैसे खा लिया।

जैसे–तैसे सोते–जगते रात निकाली। सुबह उठते ही सड़क के दूसरी और रहने वाले पप्पू से ऑटो बुलवाया और काली के घर की ओर चल दिए। वहां जाकर देखा तो कारण पता चला। काली को जबरदस्त बुखार चढ़ा हुआ है। उसके बेटे–बेटी वहीं बैठे हैं उसके पास। क्या हुआ ? घर आते हुए बाबूजी बड़ी आत्मीयता से काली के पास बैठ गए। उसका सिर और हाथ सहलाते हुए बुखार चेक करने लगे। जब पता चला कि सुबह कोई दवाई वाले से पूछकर गोली दी है, फिर भी बुखार नहीं उतरा तो कुछ सोचा सुंदरलाल जी ने और तत्काल काल बाई को उसके बच्चों के सहित ऑटो में बिठाकर घर ले आए। सामने वाले पप्पू को बुलाकर कुछ दवाई गोलियां मंगवाई और कालीबाई की लड़की को किचन में रोटी बनाने का बोल दिया।

कालीबाई अभी भी बुखार में तप रही थी। तब तक लगातार सोच विचार में डूबे सुंदरलाल जी ने एक बहुत बड़ा निर्णय ले डाला। कालीबाई के लड़के को लिया फिर से आटो बुलवाया और काली के घर जा पहुंचे उन तीनों के सारे कपड़ेबिस्तर छोटे–मोटे बर्तन समेट कर ऑटो में रखकर घर ले आए। सुंदरलाल जी का लंबा चौड़ा मकान था, आगे दालान था, फिर एक छोटा सा बगीचा जिसमें एक और गाड़ी का गैरेज बना हुआ था जो कई दिनों से खाली था। उसमें कालीबाई का सामान रखवा दिया। दोनों बच्चों को बोल दिया कि तुम यहीं रहोगे।

शाम होते–होते काली बाई का थोड़ा बुखार उतरा। खाना खाया। जब उसे पता चला बाबूजी सारा सामान घर से ले आए हैं और यह कह रहे हैं कि तुम सब अब यहीं रहोगे। सुनकर चौंक गई काली। बुखार में खड़ी हो गई। हाथ जोड़ते हुए कहने लगी– 'बाबूजी ऐसा मत करो! बाबू जी ऐसा मत करो! क्या कहेंगे सब लोग ? आप को बदनाम कर देंगे। घरवाले आपको जीने नहीं देंगे। मेरा क्या है, मैं तो अपने घर चली जाउंगी और अपने ही घर से आया करुंगी आप मेरा सामान वापस भिजवा दो।'

लेकिन सुंदरलाल जी के चेहरे पर कोइ शंका नहीं थी। वे स्पष्ट बोले– 'अब तुम यहीं रहोगी। अलग कमरा दे दिया गया है। और मुझे किसी की भी कोई परवाह नहीं है।'

रात होते–होते कालीबाई और दोनों बच्चे उस घर कहे जाने वाले गैरेज में चले गए। रात को भी सुंदरलाल जी ने काली को

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बुखार की गोलियां दीं, और वापस अपने हॉल में आकर बड़े सुकून से सोने की तैयारी करने लगे। वे संतुष्ट थे कि उन्होंने एक बहुत बड़ी समस्या का हल पा लिया है, और अब अपना जीवन गुजार सकेंगे सुकून से।

दूसरे दिन शाम को जब राकेश रूटीन से बाबू जी से मिलने आया और वहाँ का नजारा देखा तो चौंक गया कालीबाई को जमकर डॉटने लगा– 'कैसे आ गई तू यहां पर ?'

कालीबाई हाथ जोड़कर खड़ी थी।

तभी बाबूजी ने कड़कती आवाज में राकेश को चुप कर दिया– 'जब तुम मुझे अच्छी तरह से नहीं रख सकते, तो मेरी व्यवस्था मुझे करने दो!'

'लेकिन बाबूजी, लोग सब क्या कहेंगे ?'

'क्या कहेंगे! मैं कोई गलत काम कर रहा हूँ ? हमारा कमरा खाली पड़ा था, इनको रहने को दे दिया। किसी को भी क्या तकलीफ इनसे!'

राकेश कुछ भी कह नहीं पाया। हाँ, यह जरूर किया उसने कि घर जाकर दोनों बड़े भाइयों को फोन लगाया और अगले तीन–चार दिन में ही घर के सारे सदस्यों की मीटिंग उस पुराने बड़े घर में चल रही थी। सभी का विचार था कि काली को यहां रखना किसी भी मायने में उचित नहीं है। लेकिन बाबूजी का यह कहना था कि 'काली को यहां रखना किसी भी बिंदु से गलत नहीं है। कई बड़े घरों में नौकरों को रहने के लिये क्वार्टर दिए जाते हैं। इसमें क्या गलत है यह मेरा ज्यादा ध्यान रख सकेगी और मैं व्यवस्थित रहूंगा।'

कोई कुछ नहीं कह पाया बाबूजी को। हाँ, यह जरूर है कि गैरेज वाले कमरे में जाकर काली को जबरदस्त डांट पिलाते हुए ईमानदार रहने की ताकीद दी गई। समस्या का जो हल हो सकता था कि अपने पिता को अपने संरक्षण में रखा जाए, यह प्रस्ताव किसी ने भी नही रखा। बाबू जी द्वारा लिया गया निर्णय बिना कुछ बोले मौन रूप से स्वीकार करते हुए तीनों बेटे वापस अपने अपने घरों को चल दिए।

अब कालीबाई अपने घर में रहती। समय पर बाबूजी की तरफ आकर चाय–नाश्ता, खाना, कपड़े और अन्य सारे काम करती और फिर अपने कमरे में चली जाती। स्वयं का खाना अपने कमरे में ही

बनाती। प्रयास करती कि जो आवश्यक दूरी है, वह बनी रहे और किसी को कुछ बोलने का मौका ना मिले।

दो चार महीने यूं ही निकले। बरसात सामने आ रही थी। बरसात के दिनों में बाबूजी का स्वास्थ्य अक्सर खराब रहता था। कालीबाई ने एक दिन राकेश बाबू को कहा कि आप कुछ दिन के लिए बाबू जी को वहां ले जाए। बरसात के दिनों में कुछ तबीयत खराब हुई तो कौन संभालेगा, लेकिन राकेश ने इन बिंदुओं पर कोई गौर नहीं किया और एक दिन ऐसा आया भी कि शाम होते–होते बाबूजी सुंदरलाल जी को, जिन्हें सर्दी–जुकाम तो तीन–चार दिन से चल ही रहा था, तीव्र बुखार ने उन्हें घेर लिया था। उनकी हालत देखकर काली और उसके दोनों बच्चे हैरान परेशान थे। तीनों में से कोई ज्यादा पढ़ा–लिखा समझदार नहीं था। राकेश बाबू को अब खबर करने का कोई साधन नहीं था ऐसे में सामने वाले पप्पू के पिताजी से कहकर मेडिकल स्टोर से कुछ दवाइयां मंगाकर बाबूजी को दी गईं। सारी रात तीनों मां–बेटे बाबूजी के आसपास बैठे रहे।

सुबह होते–होते बाबू जी को नींद आई और कुछ बुखार का जोर कम हुआ, तब कहीं जाकर राकेश तक खबर पहुंची। मधु और राकेश दोनों तत्काल आए और बाबू जी को अपने फ्लैट में लिवा ले गए। बा–मुश्किल चार दिन रह पाए बाबूजी राकेश के यहां। जैसे ही थोड़ा बुखार सुधरा कि उन्होंने जिद करके वापस घर जाने की बात कह डाली। औपचारिक रूप से ना–ना करते हुए भी राकेश ने बाबूजी को वापस घर छोड़ दिया।

काली और उसके बच्चे जो वहीं गैरेज में रह रहे थे। बड़ी बेचैनी से बाबूजी का इंतजार कर रहे थे। उन्हें जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। बाबूजी के वहां पहुंचते ही मानों उस पुराने भवन में बहार आ गई हो, वापस बस्ती बस गई हो, और काली ने फिर बड़ी लगन से ईमानदारी से बाबू जी की सेवा करना प्रारंभ कर दी।

समय ऐसे ही बीत रहा था। तीनों बेटे, जो कभी सुंदरलाल जी के परिवार का एक हिस्सा थे, अब अपने अपने परिवारों में अपनी अपनी नौकरी मे व्यस्त थे और इन तीनों परिवार का जनक जिसका परिवार घटते–घटते अकेले खुद तक आकर ठहर गया था जो अपना बचा समय अपने पुराने घर मे अकेले ही गुजारने के लिये अभिशप्त था। ऐसे में काली ना जाने कौन से जन्म का कर्ज चुकाने आई थी

या सुंदरलाल जी पर अगले जन्म के लिए कर्ज चढ़ाने आई थी, क्योंकि अब काली और उसके दोनों बच्चे ही सुंदर लालजी का परिवार बन गए थे। ऐसे ही समय में अचानक सुंदरलाल जी को याद आई, उनकी पत्नी की पुण्यतिथि आ रही है। पत्नी को जुदा हुए दो साल हो चुके थे। श्राद्ध पक्ष में कार्यक्रम किया जाना था। सुंदरलाल जी की इच्छा थी कि तीनों बेटे–बहू, बेटी–दामाद सभी यहां पर इकट्ठे हों। इस पुराने घर में ही उर्मिला का श्राद्ध–कर्म सम्पन्न हो। कुछ ना नुकुर के बाद बेटों ने अपनी सहमति दे दी। बेटी भी आने को तैयार थी।

कार्यक्रम के तीन–चार दिन पहले तक सुंदरलाल जी ने काली की सहायता से कार्यक्रम की सारी व्यवस्था कर डाली। पूजा–पाठ के लिए पंडित जी, रसोई बनाने के लिये हलवाई और एक नौकर काम के लिए अनुबंधित कर लिया गया था। काली ने घर के तीनों चारों कमरे मेहमानों के ठहरने के लिए तैयार कर दिए थे और निर्धारित तिथि की पूर्व संध्या पर तीनों बेटे–बहू और बेटी आ चुके थे। घर में बढ़ी चहल–पहल थी। तीनों बहूएँ जो आशंकित थी कि वहां जाकर सारा काम करना पड़ेगा। वे सारी व्यवस्था देखकर आश्चर्य में रह गईं। काली ने दिन–रात एक करके सारे मेहमानों के सोने, उठने बैठने, खाने–पीने की व्यवस्था कर डाली थी। लेकिन इस उत्तम व्यवस्था से पैदा होने वाली संतुष्टि या सराहना के भाव को एक संशय के भाव ने फीका कर दिया था। बेटों ने तो ज्यादा ध्यान नहीं दिया, लेकिन बहुओं ने देखा और गौर से देखा कि घर की हर व्यवस्था में काली का दखल है। घर की कौन सी चीज कहां रखी है, यह काली को मालूम है। कल क्या–क्या होना है, यह काली को मालूम है। नाश्ते में क्या बना है, खाने में क्या बना है, हलवाई कब आएगा आदि आदि बाबूजी द्वारा काली से ही पूछा जा रहा था। यह बात तीनो बहुओं के लिए घोर चिंताजनक साबित हो रही थी।

शाम का खाना होने के बाद रात्रि विश्राम के लिए अपने कमरे में पहुंचते ही तीनों बहुओं में धीमी–धीमी आवाज में एक खुसुरपुसुर वाली मीटिंग शुरू हो गई और कुछ ही क्षणों में इस मीटिंग में बहुओं ने अपने पतियों को भी शामिल कर लिया। तीनों बहुओं द्वारा यह चिंता व्यक्त की गई कि काली ने बाबूजी को कुछ कर दिया है। सारा कामकाज उसी के जिम्मे है। उसने तो सारा घर हथिया लिया है।

पता नहीं घर का क्या–क्या सामान गायब हो चुका होगा। बेटों को भी कुछ चिंता होने लगी। बात तो सही है, एक नौकरानी का घर के काम में इतना दखल अच्छी बात नहीं है। लेकिन बेटे–बहुओं के चतुर दिमाग इससे आगे की सोचने में भी संकोच कर रहे थे, क्योंकि उन्हें यह बोध था कि ऐसी स्थिति निर्मित करने में उनका भी हाथ है। अभी इस बातचीत का कुछ निर्णय तो नहीं निकला, लेकिन बहुओं ने तय किया कि कल काली के कमरे की तलाशी लेंगे... गुपचुप!

प्रातःकाल सभी उठकर स्नान–ध्यान से निवृत हुए। हलवाई और पंडित जी आ चुके थे। सभी अपने काम में लग चुके थे। पूजा पाठ, हवन पूजन के पश्चात पंडित जी को कपड़े दान दक्षिणा दी गई और इसके बाद बाबूजी ने जो करना चाहा, उसे देखकर बहू बेटे चौंक गये। इस कार्यक्रम के चलते हुए ही दोनों छोटी बहू गुपचुप बाहर जाकर काली के कमरे की तलाशी में लगी थी। बड़ी बहू और बेटे ही बैठे थे। पंडित जी जा चुके थे। सुंदरलाल जी ने फिर कपड़ों के तीन पैकेट निकालकर बड़ी बहू के हाथ में दिए– 'बहू, यह काली को और इसके बच्चों को दे दो!'

'क्या है इसमें बाबूजी!' बहू ने पूछा।

'काली के और बच्चों के कपड़े हैं।'

'लेकिन बाबू जी अभी यह सब देने की क्या जरूरत है ?'

'आज तुम्हारी मां का श्राद्ध है, और ऐसे में हमें वह काम करना चाहिए, जिससे उसको खुशी मिले आत्मिक शांति हो!'

'लेकिन काली और बच्चों को कपड़े देने से तो काली खुश होगी। इससे अम्मा जी की आत्मिक शांति का क्या संबंध है ?'

बड़ी बहू की बात पूरी हुई ही थी कि दोनों बहुएं वहां आ चुकी थीं। हाथों में पांच–सात पुरानी साड़िया और अन्य कुछ सामान लेकर। आते ही छोटी बहू बोल पड़ी– 'वैसे भी बाबूजी, काली को कुछ देने की क्या जरूरत है, इसको तो जो चाहिए वह खुद ही ले लेती है! चाहे माँ जी की साड़ियां हों या कुछ और! कोई भी सामान वो ले जाना चाहे खुले में आपके सामने ले या चोरी छुपे ले, कौन देखने वाला है ?'

बाबूजी चौंके। काली भी चौंककर खड़ी हो गई– क्या कह रही है बहू जी!

बाबूजी जोर से बोले– 'यह क्या बोल रही हो ?'

'सच तो बोल रहे हैं बाबू जी! यह देखो अम्मा की महंगी–महंगी साड़ियां!' कहते हुए बहू ने हाथ में रखी चारों–पांचों साड़ी नीचे पटक दी– 'जाने कब चोरी करके ले गई थी। अभी इसके कमरे से तलाश करके लेकर आएं हैं। और भी वहां बहुत–सा सामान है।'

काली चिल्ला पड़ी– 'बहूरानी सोच समझ के बोलना! मैंने एक भी चीज को हाथ नही लगाया है। एक तिनके की भी चोरी नहीं की है।'

'फिर ये साड़ियां तुम्हारे कमरे में कैसे पहुंच गई ?'

'यह मैंने दिए बहू काली को! उर्मिला की पुरानी साड़ियां मैंने दी हैं, और इसमें क्या हर्ज है ?'

'बाबूजी नए कपड़े देने में भी कोइ हर्ज नहीं है। पर अच्छे घरों में ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं। लोगों को बातें बनाते देर नहीं लगेगी।'

'मुझे इन साड़ियों का कोई लालच नहीं बहुरानी। आप ले लो वापस। मैं तो मेरा जीवन पुराने कपड़ों में भी जी सकती है।'

'तुम कैसा जीवन जी रही हो, हम सब देख रहे हैं। यह फेयर एंड लवली क्रीम तुम्हारे कमरे में मिली। पाउडर और सुगंधित तेल तुम्हारे कमरे में यह सब किसके लिए ? और किसने दिये तुम्हें ? शर्म नहीं आती इस उम्र में तुम्हें क्रीम पाउडर लगाते ? क्यों इतना सजती संवरती हो, और पिता समान बूढ़े बाबूजी के ऊपर...!'

'बहू...!' चीख पड़े सुंदरलाल जी– 'अब एक भी शब्द मुंह से मत निकालना, वरना ठीक नहीं होगा।'

काली जोरों से रोने लगी थी। उसके दोनों बच्चों उससे चिपक गए थे। और फिर बाबूजी ने बोलना शुरू किया– 'क्या क्रीम पाउडर लगाने का शौक और अधिकार सिर्फ तुम्हें ही है, कोई गरीब औरत क्रीम पाउडर नहीं लगा सकती, फेयर लवली नहीं लगा सकती। मैंने ही दी होगी उसे या वो भी बाजार से लाई होगी, क्या फर्क पड़ता है ?'

'फर्क पड़ता है बाबूजी! काली एक नौकरानी है। वह हमारी आपकी क्या लगती है ? आप उसके लिए अपनी बहुओं को बुरा कह रहे हैं।' बड़े बेटे ने दखल देते हुए बाबूजी की ओर देखा।

'काली कौन है मेरी ? क्या लगती है मेरी ? बहुत बड़ी बात पूछ रहे हो बेटे तुम! इसका जवाब तुम क्या, मैं भी अभी तक नहीं समझ पाया कि मेरी क्या लगती है काली ? जिसने मुझे जन्म नहीं दिया, यह मेरी मां नहीं है, यह मेरी बेटी भी नहीं है, मेरी पत्नी स्वर्ग सिधार चुकी है और यह मेरी बहन भी नहीं है... फिर यह कौन है ? इसका क्या रिश्ता है मुझसे, यह मेरी कौन है ? जिसको यह मालूम है कि मुझे सुबह की क्या दवाई लेना है और शाम की क्या दवाई लेना है... जिसे यह मालूम है कि मेरी पीठ दुखती है तो कौन–सा मलहम और घुटने दुखे तो कौन–सा तेल मालिश करना है! ...जिसे यह भी मालूम है कि मुझे कब भूख लगी है, कब प्यास लगी है और कब मुझे चाय की तलब हो रही है! और यह कौन है जो आधी रात को जब मुझे खांसी का दौरा चलता है तो अपने कमरे से भागती हुई आकर मुझे बिस्तर पर बिठाकर खांसी की गोली देती है और पीठ पर हाथ फेरती है! यदि ये मां–बेटी या बहन या पत्नी नहीं है , फिर तो यह कोई देवी ही हो सकती है! इसमें किसी देवी का या मेरी पत्नी उर्मिला का अंश ही समा गया है शायद! जिसने मेरे तीन–तीन बेटे बहू के होते हुए बेटी और दामाद के होते हुए भी एक बूढ़े बीमार आदमी की सारी जवाबदारी अपने सर पर ले ली है! तुम्हें मेरा ध्यान कब आया ? तुमने कब सोचा कि मुझ अकेले बूढ़े के दिन रात कैसे निकलते हैं ? मुझे कब क्या तकलीफ शरीर में होने लग जाती है ? यदि काली ना होती बेटा तो तुम्हारा बाप कभी का मर गया होता! मेरे लिए सब कुछ है काली! तो अब ये सारी बातें छोड़ो! प्रेम से खाना खाओ और अपने–अपने घर जाओ! जब मेरे मरने का समाचार मिले, तब मेरे अंतिम संस्कार के लिए आ जाना। और हाँ बहू, खबरदार सावधान रहना, अब इसके बाहर निकलने की बात मत करना। मैं अपनी वसीयत लिख चुका हूँ, उसमें तुम तीनों बेटों को तुम्हारा हिस्सा बराबर दिया है, और साथ में यह आगे का कमरा जिसमें यह रहती है यह मैंने इसी के नाम लिख दिया है इसको और इसके बच्चों को यहां से कोई नहीं हटा सकेगा!' अपनी बात पूरी करते–करते सुंदरलाल जी को अचानक तेज खांसी का दौर चल पडा। बेटे–बेटी और काली सभी उनकी ओर दौड़ पड़े। काली का हाथ कुछ संकोच में रहते हुए भी उनकी पीठ पर जा चुका था। खांसी कम होते–होते सीधे हाथ में

पकड़ी लाठी के बल पर खड़े होते हुए सुंदरलाल जी बोले– 'काली मुझे मेरे कमरे तक ले चल! अब मैं आराम करूंगा।'

काली उनका बाया हाथ पकड़कर कमरे की ओर ले जा रही थी। दायें हाथ में लाठी का सहारा लेकर और बायें हाथ काली के कंधे पर रखते हुए अपने कमरे की ओर जा रहे सुंदरलाल जी इतने तूफान के बावजूद शांत थे। और उन्हें जाते देखते हुए तीनों बेटे–बहू, बेटी और दामाद इस अकल्पनीय दृश्य से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर चुप से थे। शायद सभी के दिमाग विचार शून्य से हो गये थे!

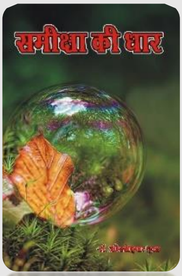

समीक्षा की धार

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

आईएसबीएन : 978-81-929060-3-4

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

अपनी कृतियों के प्रकाशन हेतु संपर्क करें...

लागत आपकी, श्रम हमारा!
75 फीसदी प्रतियाँ आपकी, 25 प्रतिशत हमारी!!

विशेष : आपकी कृतियों व उन पर विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षाओं द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में व्यापक प्रचार।

मधुराक्षर प्रकाशन
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर फतेहपुर (उ0प्र0) 212 601
madhurakshar@gmail.com +91 9918695656

कहानी

सरप्राइज

डॉ. गोपाल निर्दोष
NN–004–0254, मालगोदाम, नवादा–805110
dr.gopalnirdosh@gmail.com

माँ–बाप के गुजर जाने के बाद भी पाँचों भाई कुछ दिनों तक बड़े ही मेलजोल से रहते रहे। लेकिन उनका यही मेलजोल न तो उनके पड़ोसियों को सुहा रहा था और न ही उनके भाइयों की ससुराल के लोगों को। सास–ससुर के गुजर जाने के बाद अपनी–अपनी बेटियों को घर की मालकिन के रूप में सपना देखने की लालसा रखनेवाले लोग इन पाँचों भाइयों के आपस के किसी भी निर्णय में जब कभी हस्तक्षेप करने लगे और अपनी चलती नहीं देख कर अपनी–अपनी बेटियों को ही उकसाने लगे। इस तरह कुछ ही दिनों में पाँचों भाइयों का आँगन अखाड़े में तब्दील होता चला गया।

माँ–बाप के इस दुनिया से चले जाने के बाद निःसंतान बड़े भाई शंकर प्रसाद ने अपने छोटे भाइयों को अपने बच्चों की तरह बड़े ही प्यार से पाला–पोसा था। उनमें से एक की शादी तो उन्होंने बड़ी ही धूम–धाम से किया था लेकिन उस बहू के घर में कदम रखते ही घर को जैसे दुर्दिन ने घेर लिया। अक्सर घर में छोटी–छोटी बात पर

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

किच—किच होने लगी और घर का आँगन रणक्षेत्र में बदल गया। बात अब बँटवारे तक पहुँच गई थी।

शंकर प्रसाद इस बँटवारे की बात को सुन कर ऐसा महसूस करने लगे, जैसे अचानक से इस पूरी दुनिया में अकेले हो गए हों। उनका ऐसा लगना स्वाभाविक भी था। उनकी शादी के चार—पाँच वर्षों तक जब उन्हें कोई संतान नहीं हुई तो उनकी पत्नी उन्हें छोड़ कर अपने दूर के एक फुफेरे भाई के ही साथ भाग गयी... और शंकर प्रसाद रह गए अपने बाप—भाइयों के साथ उन्हीं के भरोसे... लेकिन, आज उनका ये भी भरोसा बिखरता हुआ—सा दिख रहा था।

कभी—कभी ऊपरवाला बड़ी ही बेमेल स्थिति उत्पन्न कर देता है। शंकर प्रसाद के अन्य भाइयों का आँगन बच्चों से भरा हुआ था, लेकिन वे सभी सरकारी नौकरी से वंचित थे और दूसरों की दुकान में नौकरी किया करते थे। इसके ठीक उलट शंकर प्रसाद की कोई संतान नहीं थी लेकिन उन्हें एक अच्छी—सी सरकारी नौकरी थी और इसी कारण उन्हें रुपयों—पैसों की कोई कमी नहीं थी। शंकर प्रसाद अपने भाइयों एवं उनके बाल—बच्चों को ही अपना पूरा परिवार मान कर चलने लगे थे और उन्हीं पर अपनी कमाई लुटाने भी लगे थे। शुरु—शुरु में तो परिवार के लोगों ने उनके पैसे को लेने में संकोच दिखाया लेकिन बाद में वे उन पर अपना अधिकार समझने लगे थे।

अपने परिवार के द्वारा जताए गए इस अधिकार से शंकर प्रसाद नाराज होने के बजाय खुद की खुशकिस्मती समझते और झूठ—मूठ का रूठकर दिखाते। लेकिन, उनका इस तरह के झूठ—मूठ का रूठना कब उनके भाइयों ने सच का मान लिया और इस कारण उनके मन में कितना जहर भरता चला गया कि उन्हें पता ही नहीं चला। वह तो पता तब चला, जब वे अन्य दिनों की भाँति एक दिन ये कह बैठे कि, "तुम लोग मुझे रुलाते हो न...रुला लो...एक दिन मैं भी तुम सबको रुलाऊँगा।"

इस पर उन्हें एक भाई से ये सुनना पड़ गया, "स्साले नपुंसक, तुम को तो ऊपरवाले ने खुद ही रोने का ठेका दे दिया है... तुम क्या हम सबको रुलाओगे।"

हद तो तब हो गयी जब उसके अन्य भाई इस बात पर ठठाकर हँस पड़े। उनके इस तरह के कटाक्ष एवं ठहाके ने शंकर प्रसाद के पूरे तन और मन को बेध कर रख दिया। लेकिन, वे शंकर

प्रसाद थे जो कुछ देर तक अपने कमरे के एक कोने में जाकर जी–भर कर रोए और फिर खुद को ये समझाने में लग गए कि 'ओह, इसमें रोने की क्या बात है...अरे काना को काना कहेंगे, लंगड़ा को लंगड़ा कहेंगे तो नपुंसक को नपुंसक नहीं तो और क्या कहेंगे...?"

कहते हैं, प्रकृति एक दुःख देती है तो उसे सह लेने की किसी–किसी को समझदारी और अंतर्शक्ति भी खूब देती है। यही कारण है कि शंकर प्रसाद ने अपने भाइयों के ताने को शिव शंकर की तरह मुस्कुराते हुए अपने कंठ में उतार लिया और अपने–आपको पूर्ववत् करते हुए भतीजे से खाना माँगने लगे। उनके इस व्यवहार पर सभी मुस्कुराने लगे।

एक दिन शंकर प्रसाद ने अपने भाइयों से कहा, "माँ–बाबूजी ने इतना बड़ा घर खड़ा कर दिया है। उनके गए हुए भी कई वर्ष बीत गए। इतने दिनों में हमलोगों ने इसके रंग–रोगन से अधिक कुछ नहीं किया है... मैं सोचता हूँ कि इसे पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। इसके लिए इसकी जहाँ–तहाँ की दरकी हुई दीवारों की अच्छी तरह से मरम्मत कर दी जाए...क्या कहते हो तुम लोग...?"

इस पर सभी भाइयों ने एक स्वर में कह दिया कि 'हमलोगों के पास इसके लिए पैसे नहीं हैं।'

बात इतनी–सी रहती तो कोई बात नहीं, लेकिन उनकी पत्नियों ने जो कह दिया, उन्हें सुनकर शंकर प्रसाद की आत्मा दरक गयी। घर की बहुओं का कहना था कि, "हमलोगों को आपकी तरह कोई सरकारी नौकरी नहीं है... और अगर कुछ पैसे हैं भी तो खाने–पहनने के लिए हमारे बाल–बच्चे हैं... हमलोग आपकी तरह निरबंस नहीं हैं।"

बस, शंकर प्रसाद जी की अंतरात्मा एक बार फिर रोने–रोने को हो आयी। लेकिन, तुरंत ही उन्होंने खुद को संभाल लिया और बड़ी ढिठाई से कहने लगे, "अब ये समाज हमको निरबंस कह ले बहू. लेकिन, आपलोग तो नहीं कहिये। अरे मेरे तो भाई, भतीजे और आपलोग हैं। हमारा भी आँगन भरा–पूरा है बहू!"

इस पर एक बहू ने कह ही दिया, "ज्यादा लल्लो–चप्पो मत कीजिए और हमलोगों को बख्श दीजिए। रही बात घर की... तो हम लोग समझ लेंगे...आप बस बँटवारा कर दीजिए।"

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

इस बात को सुनकर शंकर प्रसाद खुद को जब्त नहीं कर सके और फट पड़े, "इस घर का बँटवारा मेरे जीते–जी तो हरगिज नहीं होगा बहू।"

"काहे नहीं होगा! माँ–बाबूजी एक आपको अकेले लिखकर गए हैं क्या...?" भाइयों ने पूछा.

"...ऐसा तो मैंने नहीं कहा!" बहुओं के साथ–साथ अपने भाइयों के भी इस तरह के तेवर देखकर शंकर प्रसाद ने अपनी दृढ़ता में थोड़ी नरमी लाते हुए कहा।

"...तो, कह दीजिए न?" पाँचवे भाई ने कटाक्ष किया।

शंकर प्रसाद को अपने भाइयों और उनकी पत्नियों के इन दिनों के तेवर देख कर लगने लगा था कि अब इस दुनिया में और अधिक दिनों तक रहना बेवकूफी है। लेकिन, इस दुनिया को बेकार की बातों के लिए छोड़ देना भी तो कायरता है। उस रात शंकर प्रसाद बड़े बेचैन रहे और ठीक से सो नहीं सके। अगले दिन घर के सदस्यों ने देखा कि काफी देर तक उनके कमरे का दरवाजा नहीं खुला। इस पर पाँचवीं बहू ने आशंका जाहिर की कि 'आज इतवार है तो काफी देर तक सो रहे होंगे... ड्यूटी तो जाना नहीं है... बाल–बच्चे तो हैं नहीं... करेंगे क्या जाग कर!"

अपनी पत्नी की इस बात की पुष्टि करने के लिए उसके पति ने दरवाजे पर थोड़ा दबाव बनाया तो दरवाजा खुल गया। देखा, तो कमरे में कोई नहीं था। उसने पलटकर इस बात की जानकारी घर के अन्य सभी सदस्यों को दी। घर के सारे बड़े सदस्य शंकर प्रसाद के कमरे में घुस गए। सबने एक–एक चीज पर गहरी नजर डाली। अचानक उनकी नजर बिछावन पर पड़े एक कागज पर पड़ी. उसमें लिखा था, "मेरे बच्चों, माँ–बाबूजी के जाने के बाद मैं इस भ्रम में जीने लगा था कि मेरे छोटे भाई लोग ही मेरे बाल–बच्चे हैं और अब मुझे उनके एवं उनके बाल–बच्चों के लिए जीना है, लेकिन तुम लोगों ने मुझे बार–बार ये अहसास दिलाकर अच्छा ही किया कि मैं निरबंस हूँ। आखिर ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध मुझे जाने का अधिकार तो है नहीं। और, जैसे हमारे समाज को अपने मांगलिक कार्य में किसी विधवा औरत के होने से बाधा महसूस होती है, वैसे ही तुम लोगों को मैं एक निरबंस व्यक्ति कैसे बर्दाश्त होता। खैर, मैं तुम लोगों की नजरों से अपनी मनहूस सूरत लेकर कहीं दूर जा रहा हूँ। पता नहीं कहाँ ?

मुझे ढूँढने का मन भी नहीं बनाना। सदा खुश रहना। मैं तुम लोगों को एक सरप्राइज देना चाहता था कि अचानक से तुमलोगों को अपना सब कुछ देकर, अपनी नौकरी से बीच में ही रिटायरमेंट ले लूँगा और कहीं दूर चला जाऊँगा। लेकिन, मेरा सोचा हुआ कभी नहीं हुआ तो ये भी क्यों होता ? एक असाध्य रोग का बहाना बन कर मैंने अपनी नौकरी से स्वैच्छिक अवकाश ले लिया है और उससे मिली राशि को मैंने छोटे भाई के नाम कर दिया है। अपने इस घर को मैंने तुम चारों भाइयों के नाम लिख दिया है। मेरे खाते में लगभग बारह लाख रूपये हैं। चारों आपस में बराबर–बराबर बाँट लेना। मैंने सारे कागजात तैयार कर दिए हैं। इसके लिए अपने वकील साहब से मिल लेना या परसों तक वे खुद ही तुम लोगों से मिल लेंगे। कहीं कोई दिक्कत नहीं होगी। मेरे बच्चों, तुमलोग कभी आपस में झगड़ा मत करना। तुम लोग आपस में मिलजुल कर रहोगे तो मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा, मेरी आत्मा को शांति मिलती रहेगी।" अंतिम वाक्य तक आते–आते सभी ने देखा कि सभी की आँखें भर आयी थीं। सभी की नजरें आपस में टकरायीं और सभी लोग 'भैया–भैया' करते हुए दहाड़े मार कर रोने लगे। उन्हें अपने भैया से मिलने वाले इस तरह के सरप्राइज की तनिक भी आशंका नहीं थी। आज उन सभी को उनकी कही वो बातें याद आ रही थीं, जो उन्होंने कभी ये कहा था कि, "तुम लोग मुझे रुलाते हो न... रुला लो... एक दिन मैं भी तुम सबको रुलाऊँगा!" घर के सभी सदस्यों को उनके द्वारा कही गयी इस बात का अर्थ आज समझ में आ रहा था।

मीडिया और स्त्री

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-1-0

संस्करण : 2014, मूल्य : 165/-

कहानी

उम्मीदों की डोर

सरोज राम मिश्रा
F-305, Parsavnath Prestige sec-93 A नॉएडा
sarojooram@gmail.com

टनाक की आवाज से पूरा कमरा गूँज गया और लिप्सा का हाथ यों खाली रह गया जैसे इसमें कोई गिलास था ही नहीं कभी। बिखरे काँच के टुकड़ों के बीच धीरे–धीरे बहता पानी, उसे रिसता हुआ रक्त लगने लगा।

'क्या... तलब ? कब.. ? कैसे ?' वह एक साँस में पूछ गई।

रोहित लिप्सा को कुछ बता रहा था पर उसकी आवाज अब लिप्सा के समक्ष धीरे–धीरे कमजोर पड़ती गई। घोर अंधेरा लिप्सा के चारों ओर इस तरह छाने लगा जैसे अपने आगोश में उसे भर लेगा।

'ओह!' धीमी आवाज के साथ वह जहाँ की तहाँ बैठ गई। मन ऊहापोह में रमा बाइस्कोप बन गया और एक– एक क्षण इस तरह से उसकी आँखों के सामने से गुजरने लगे जैसे कोई चलचित्र हो। लिप्सा के घर के नुक्कड़ पर चलने वाली कोचिंग सेंटर के पास चाय की दुकान पर शाम होते होते इर्द–गिर्द गहमा–गहमी बढ़ जाती है। शोरगूल में कहकहे लगाते बच्चे, साइकिल की टन–टन, मोटरसाकिल की घर्र–घर्र से पूरा सड़क गूँज उठता है। सभी अपने–अपने सपनों को पूरा करने के लिए अपना घर छोड़कर यहाँ

तैयारी के लिए आते हैं। कोई डॉक्टर का पंख लगाए है तो कोई इंजीनियर का, कोई आईएएस का पंख लगाकर उड़ना चाहता है... पर उड़ान तो सभी को भरना है... ऊँची से ऊँची उड़ान, बिलकुल रंग–बिरंगी पतंगों की तरह जो उम्मीदों का डोर थामे सूरज को छूना चाहती हैं। पर शायद इन नौजवानों को इस बात का इल्म नहीं होता कि ऊँची उड़ान भरती पतंगों की डोर अक्सर तेज हवा के झोकें से कभी–कभी टूट जाया करती हैं। ऐसी ही एक उड़ान की चाह नीली–नीली झील सी आँखों वाली श्तलबश् में भी दिखाई देती थी। चेहरे पर आत्मविश्वास, अपने में सिमटी, चुप, किताब–कापियों में उलझी और खुद के विचारों का एक मोटा घेरा उसे घेरे रहता थाय न काहू से दोस्ती न काहू से वैर! किसी तीसरे की जगह थी ही कहाँ वहाँ ?

'तलब!' लिप्सा ने उसे लॉबी से निकलते देख रोकने की चाह से बुलाया।

वह पलटी और हमेशा की तरह गुलाब की पंखुड़ियाँ को बिखरने वाली मुस्कान के साथ नमन करते हुए बोली, 'रास्ते में बहुत भीड़ थी मैम, पहले ही क्लास के लिए देर हो गई है। बाद में मिलूँ आपसे मैं ?' वह झटके से मुड़ी और निकल गई। पता नहीं क्यों लिप्सा को लगने लगा था कि आज– कल वह उस से कतराने लगी है। शायद वह उन प्रश्नों से बचना चाहती है जो हाल ही में उसके परिवार के बारे में लोग कह रहे थे।

'कैसे इतना बड़ा कदम उठा लिया ...आत्महत्या! समझदार–सी लगने वाली लड़की आत्महत्या कैसे कर सकती है ? लिप्सा का मन मानने को तैयार नहीं था। सोच ही नहीं पा रही थी। कभी भी वह निराशा या डिप्रेशन में दिखी नहीं । परिवार भी धनाढ़्य है, इश्क–मुश्क का कोई लफड़ा भी कभी सुना नहीं थाय थी क्या तकलीफ उसे।' लिप्सा मन–ही–मन में बुदबुदा रही थी।

'लक्ष्य क्या होता है मैम ? क्या ये जीवन में सबसे बड़ा होता है ? ...मेरी माँ कहती है।' लिप्सा की आया की नन्हीं–सी बच्ची ने अचानक ही उससे पूछा। जो उसके पास पढ़ने आई थी।

वह जवाब देने ही वाली थी कि बच्ची ने तपाक से कहना शुरू किया, 'मेरी माँ भी जब–तब मुझसे कहती है कि पढ़ो... पढ़ो, ताकि मेरी तरह तुम्हें घर घर काम ना करना पड़े। हमेशा मेरे पीछे

पड़ी रहती हैं, इसी तरह होता है जब पीछे पड़ेंगे तो बच्चे खुद ही मरेगें।'

लिप्सा हैरत भरी निगाहों से उस छोटी–सी बच्ची को देखते हुए सोचने लगी कि ये कौन–सा युग आ गया है। किस युग में जी रहे हैं सब ? आजकल के बच्चों को क्या हो गया ह‍ै? माँ–बाप की सीख इन्हें भाती नहीं, छोटी–छोटी बातों में तैश में आ जाते हैं, सब कुछ जीवन में आसानी से मिलता जाए बस। इसीलिए हताशा के घेरे में बंधकर निकल नहीं पाते, कुछ संघर्ष से डरकर, तो कुछ जिंदगी से थककर मौत को गले लगाते हैं। पर मरने से पहले क्या ये अपने माता–पिता के बारे में नहीं सोचते, जिसने इन्हें जन्म दिया कैसे जीएँगे उसके बिना ताउम्र। उसके जीवन पर इनका कोई अधिकार नहीं, एक बार कहकर तो देखें कि मैं इन सपनों को पूरा नहीं कर पा रहा, नहीं बन पा रहा मैं डॉक्टर... इंजीनियर! 'कोई बात नहीं कुछ और कर लेंगे, कुछ नया सोच लेगें।' हर माता –पिता यही कहेंगे। क्या तलब भी किसी परिणाम के भय से! नहीं ...नहीं!' लिप्सा जोर से खुद से ही कह उठी।

तभी दरवाजे पर घंटी बजी और एक लड़का उसे एक लिफाफा थमा गया, जिस पर लिखा था– 'मेरी प्रिय दीदी'।

सूखे पत्ते की तरह काँपते हुए उसने झटपट पत्र खोला।

'मैम,

मैंने हमेशा आपमें अपनी दीदी देखा.... खैर, मैं बता नहीं पा रही कि मैं किस मानसिक यन्त्रणा से गुजर रही हूँ। ये तनाव मुझे दिन–ब–दिन मारे जा रहा है। मुझे दुःख देने वाला कोई और नहीं मुझे जन्म देने वाले मेरे माता–पिता हैं। कल मेरा नीट का परिणाम आने वाला है और मुझे पता है कि मैं अव्वलश आकर अखबारों में छा जाऊँगी पर जिस माता–पिता का नाम रोशन करने के लिए मैं डॉक्टर बनना चाहती थी, आज वो साथ में ही नहीं हैं। जीते जी मैंने हमेशा उन्हें साथ में देखा, अब उन्हें तलाक लेते नहीं देख पाऊँगी। कल मेरे सामने सबसे बड़ा प्रश्न ये उठता कि तुम माँ के साथ रहोगी या पिता के साथ। मैं अब तक दोनों के साथ जी रही हूँ और जीना चाहती थी....पर अब... अब....... और नहीं देख पाऊँगी ये झगड़े ..... मुझे माफ कर देना।

आपकी तलब!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हाथ में खत लिए लिप्सा सन्न खड़ी सोचती रही उम्मीदों की डोर कमजोर नहीं थी, सम्बन्धों की डोर ढीली व कमजोर पड़ गई थी। माँ–बाप तो आपस में ही उलझे पड़े थेय नौबत तलाक तक पहुँच गई। आपस में उलझे लोग बच्चे की परेशानियाँ कब सुन पाते? उसके दिमाग में क्या क्या कशमकश थीय किस तनाव से गुजर रही थी, कैसे सुन पाते ?

लिप्सा को उसके माता–पिता पर बड़ा क्षोभ था। वह चिल्ला–चिल्लाकर पूछना चाहती थी कि ऐसे लोग शादी क्यों करते हैं, अपना जीवन तो लगभग जी लिया पर उन कलियों का क्या जो अभी खिल भी नहीं पाई थीं ? जिनके जीवन की तरंगें अपनो की जिद्द में कहीं खो गई। खिन्न मन से वह मुँडेर पर खड़ी थी कि तभी न जाने कहाँ से शाख से बिछड़ा एक 'नन्हा पीला पत्ता' उसके हाथ में आ गया और उसका अंतर्मन कह उठा– 'तलब!'

लघुकथा

अस्तित्व

डॉ. पूरन सिंह
240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर,नई दिल्ली

अभी दो साल पहले ही तो दोनों की शादी हुई थी। अथाह प्यार था दोनों में फिर न जाने किस बात पर दोनों में तनातनी हो गई। पत्नी अपनी माँ के घर जाकर बैठ गई और वह अपने घर में बैठा–बैठा कुढ़ता रहा। सप्ताह, महीना और देखते– देखते एक साल होने को आई। कुछ दिनों तो फोन पर बातें हुईं फिर वो भी बंद हो गई थीं दोनों में।

तभी एक दिन वह सुबह–सुबह पूजा कर रहा था। पत्नी के न आने से मन व्यथित था। सो पूजा करते–करते भगवान के समक्ष बिखर गया, 'नहीं रह सकता मैं सुभद्रा के बिना। हे प्रभु या तो उससे मुझे मिला दे या फिर अपने पास बुला ले।' भगवान अपने भक्तों को कभी दुखी नहीं देख सकते तो फिर उसे कैसे देखते। पूछ लिया था, 'बहुत प्यार करते हो अपनी सुभद्रा को।'

'हाँ।'

'तो जाओ और जाकर मना लाओ उसे।' भगवान ने मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

'मैं नहीं जाऊंगा। वह जैसे गई है वैसे ही लौट आए। मैं क्यों जाऊँ मनाने उसे। मेरा कोई अस्तित्व नहीं है क्या।' जिद पर अड़ गया था वह।

'मैं तुमसे एक बात कहूँ।' भगवान अब बिल्कुल बच्चा बन गए थे।

वह आँखे बंद किए भगवान की बात सुन रहा था और आँखें बंद किए–किए ही, गर्दन हिला दी थी मानो कहना चाह रहा था, 'अब कहो भी।'

'तुम सुभद्रा को प्यार नहीं करते।'

'कैसे।'

'जो प्यार करते हैं। उनमें अहंकार नहीं होता। उनका अपना तो कोई अस्तित्व ही नहीं होता जिसे प्यार करते हैं उसी में अपना अस्तित्व खोजते हैं। एक बार सच्चा प्यार करके तो देखो।' भगवान के इतना कहने पर उसने आँखें खोलीं तो वहाँ कोई नहीं था। वह चारों ओर देख रहा था।

उस दिन वह ऑफिस नहीं गया था। अपना ब्रीफकेस संभाल रहा था कि होंठ बजने लगे थे, 'सुभद्रा।'

❖

प्रतिस्पर्धा

महेश कुमार केशरी
मेघदूत मार्केट फुसरो, बोकारो झारखंड
keshrimahesh322@gmail.com

'तीन–सौ–बारह नंबर का टी. वी. आई. सी. आप कब तक लाकर मुझे दीजियेगा।' बार– बार कस्टमर मुझसे तगादा कर रहा है। कस्टमर कहता है– 'अगर आप ये टी. वी. नहीं बना सकते तो मुझे टी. वी. ही लौटा दीजिये! आखिर मैं कब तक टालूं उसको. हम एक टी. वी. बनायेंगे तो एक–डेढ़ हजार रूपया तो कम–से–कम मिल ही जायेगा। और आई. सी. में भी दो–तीन सौ रूपया अलग से मार्जिन मिल ही जायेगा। बोलिये हम आई. सी. लेने कब आएं!'

मनोहरपुर देहात एरिया है यहां पार्टस की पहले केवल शर्मा जी की ही एक दुकान थी लेकिन, जबसे उनके भतीजे ने ऊपर मोड़ पर इलेक्ट्रॉनिक की दुकान खोल ली थी तब से शर्मा जी की अपनी दुकान बहुत ही कम चल रही थी। चूंकि, शर्मा जी का भतीजा पहले शर्मा जी की ही दुकान काम करता था, और उसे उस दुकान की सारी जानकारी थी इसलिए उसने भी ऊपर मोड़ पर इलेक्ट्रॉनिक पार्टस की ही दुकान खोल रखी थी। कारण ये था कि शादी के बाद शर्मा जी के भतीजे का खर्चा बहुत बढ गया था। इसलिए मजबूर हो कर उसको अलग अपनी दुकान खोलनी पड़ी थी।

'अरे, भाई अब ये आई. सी. मिलना बंद हो गया है। और अब एल. सी. डी., एल. ई. डी., टी. वी. का जमाना है... अब मैं कैसे बताऊँ तुम्हें.. ?? ..इस नंबर का आई. सी. अब नहीं मिलता है।' शर्मा जी किसी पुराने स्टेपलाइजर का नट बोल्ट टाइट करते हुए बोले।

'और कोई दुकान है क्या... यहां आस पास में ?' ग्राहक ने शर्मा जी से पूछा।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'नहीं, और कोई दुकान नहीं है यहा!' शर्मा जी बोले। और कनखियों से एक नजर अपनी पत्नी रमा को देखा। उन्हें लगा उन्होनें कोई चीज चोरी की हा, ये झूठ बोलकर।

ग्राहक जब चला गया तो उनकी पत्नी रमादेवी ने उनसे पूछ लिया– 'इस ग्राहक को आपने मनीष की दुकान पर क्यों नहीं भेज दिया। हो सकता है ये आई. सी. उसको वहां मिल जाती!'

पता नहीं शर्मा जी को क्या हुआ वो अपनी पत्नी रमा देवी से गुस्साते हुए बोले– 'किसको कहां भेजना है, कहां नहीं भेजना है, मुझे अच्छी तरह पता है! मनीष अब मेरा भतीजा नहीं है, वो मेरा कंपटेटर है, कंपटेटर.! समझीं तुम!! जब ग्राहक का पैर किसी एक दुकान में जाने लगता है, तब ग्राहक लौटकर नहीं आता है। कोई अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी थोड़े ही मारता है। पता नहीं और क्या–क्या शर्मा जी बहुत देर तक बडबडाते रहे थे।

रमा देवी के पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था। रमा देवी खाने का खाली टिफिन धीरे से उठाकर खिसक लीं थी। इसका एहसास शर्मा जी को बहुत देर बाद हुआ।

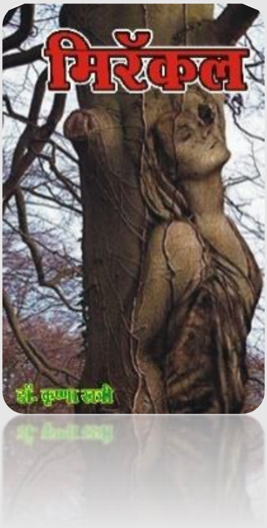

मिरॅकल

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-2-7

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

लघुकथा

टाफी चूसने वाली

पूनम पांडे
पुष्कर रोड, कोटरा, अजमेर
punam2411@gmail.com

वह अपने पल्लू से सर को ढंक कर इस बेमौसम बरसात से जैसे तैसे से बचने की कोशिश कर रही थी, तभी उसने अपनी टैक्सी लाकर सामने खड़ी कर दी।

वह दरवाजा खोलकर अंदर बैठ गयी, फिर बोलीं– 'मुझे एंजिल वैली स्कूल तक छोड़ दो आज मेरी गाड़ी नहीं आई।'

'जी, बिलकुल!' उसने सहमति में सर हिला दिया। और गाड़ी को तुरंत स्कूल की दिशा में घुमा दिया।

लगभग बीस–पच्चीस मिनट का रास्ता था। गाड़ी चलने के पहले ही मिनट में उसको मीठी–मीठी महक आने लगी– अहा, टाफी की गंध! और उसके बाद उसको स्वाद लेकर चूसने की आवाज भी। वह बगैर पीछे देखे समझ गया कि वह ही थीं टाफी के मजे में जीभ, गले और आत्मा तक डूबी हुई है। वह मन में सोचने लगा कि इसमें कोई अजीब बात थोड़े ही ना है, अब टाफी तो कोई भी खा सकता है। खुद उसके दादाजी अस्सी की उम्र तक टाफी जरूर खा लेते थे। दांत नहीं थे, मगर जीभ से चूसते रहते थे और गरदन भी हिलाते रहते थे।

अब कुछ सेकेंड बाद उसको कुछ पत्रिका जैसी चीज के पन्ने फड़फड़ाने की आवाज आने लगी। वह मन ही अंदाज लगाता रहा कि होगी कोई गंभीर–सी मैगजीन या कोई और कागज भी हो सकते हैं। मगर सवारी तो अचानक ही जोर–जोर से हँसने लगी और लगातार 'हो–हो, हा–हा' करके हंसती ही रही।

वह परेशान हो गया कि यह कहीं कोई मंदबुद्धि या पागल तो नहीं। पिछले सप्ताह उसकी टैक्सी में ऐसी ही एक महिला हाथ देकर घुस

गई और बैठ गई थी। उसको लगा जल्दी में है, अभी बोलेगी कि जाना कहां है, पर वह तो खामोश थी। वह तो उसकी समझदारी थी कि उसने दो मिनट बाद ही गौर किया कि दो कारें लगातार उसकी टैक्सी का पीछा कर रही हैं। उसने कुछ सोचा और तुरंत टैक्सी रोक दी। वो कारें भी रुक गईं। सब खुलासा हो गया था। वह महिला एक मरीज थी। उसका अभी आपरेशन होना था और वह चीर–फाड़ के डर से मौका पाकर अस्पताल से ही भाग गई थी। खैर, सबके समझाने पर वह मान गई। वह अपना किराया लेकर चलता बना।

इधर ये सवारी भी तो हँसती ही जा रही थी। कौन है ये ? वह यही सोच रहा था कि स्कूल का गेट आ गया। उसने टैक्सी रोक दी। पीछे देखा कि बीस मिनट में एक पैकेट टाफियां खा ली गई थीं और दो कॉमिक्स सीट पर रखीं थीं। ओह, तो यह था हँसने का राज!

वह सौ–सौ के दो कड़क नोटों का किराया थमाकर बोली– 'जरा गेट के अंदर चलो और दफ्तर के सामने उतार दो!'

गरदन हिलाकर वह आगे बढ गया। उसको कोई दिक्कत नहीं थी, बिलकुल वाजिब किराया बिना बोले मिल रहा था। उसने इतनी इंसानियत और दिखा दी कि दफ्तर के आगे टैक्सी रोक दी और पहले उतर कर गेट खोल दिया। तब तक वो टाफी के रैपर और कॉमिक्स अपने बैग में रख चुकी थी।

वह नीचे उतरी तो सामने दो टीचर और चार बच्चे खड़े थे, शायद पंद्रह–सोलह बरस को होंगे। वह उनसे नजर मिलाते ही चीखने–चिल्लाने लगी।

बीस मिनट की शांति हँसी के बुलबुलों के बाद यह दैत्यनुमा स्वर सुनकर वह एकदम चौंक गया। गाड़ी को घुमाते हुए उसने खिड़की खुली रखी। वह महिला दहाड़ रही थी– 'सुना तुम मास्टरों ने, मैं कह रही हूँ कि डंडे मार–मारकर घायल कर दो इनको! कक्षा के पंखे कैसे गुलाब के फूल बना दिये इन्होंने। बुलाओ इनके मां–बाप को, भरेंगे जुर्माना!'

अब वह गेट पार कर चुका था। पर उस महिला की चीख अब भी सुनाई दे रही थी। उसने यों ही पीछे मुड़कर टैक्सी की पैसेंजर सीट पर गौर से देखा एक टाफी रखी थी। चमकती आंखों से उसने हाथ बढ़ाया और लपक कर टाफी उठा ली। कोई विलायती टाफी थी रैपर भी शानदार था। उसने मुंह में डाली। 'अहा!' उसके मुंह में घुल गई। टाफी तो शहद–सी मीठी थी।

❖

लघुकथा

बूढ़ा बरगद और राधा

शुभम पांडेय 'गगन'
अयोध्या, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश
smartsp9991@gmail.com

राधा आज भी दूसरी मंजिल पर बने कमरे की खिड़की पर बैठकर बाहर देख रही जैसे वह वहां अपनी युवा अवस्था में देखती थी। आज राधा पूरे 70 बरस की हो गयी और सामने लगा बरगद भी जो उसके पिता जी ने उसके पैदा होने पर लगाया था। वह बरगद इस मोहल्ले के सबसे पुराना पेड़ और राधा सबसे पुरानी शख्सियत है। राधा भी बूढ़ी हो गयी है, अब शरीर में न वो ताकत है और न चमक, ठीक वैसे ही बरगद सूख गया और डालें उसकी ऐंठ गयी हैं। आखिर वो भी बूढ़ा हो रहा है। पेड़ का ऊपरी हिस्सा काट दिया गया, इसीलिए ज्यादा नहीं बचा बिल्कुल बूढ़े व्यक्ति की तरह झुका हुआ दिखता है।

राधा दो बेटों की मां है जो कंपनियों में नौकरी करते है, एक साथ रहता है तो दूसरा विदेश में रहता है। आजकल के युवा घर से बाहर रहने में अपना भला जानते हैं, क्योंकि बुजुर्गों की बातें उनसे सहन नही होती उन्हें उनका अनुभव बस बेकार लगता है। लेकिन वो भूल जाते हैं कि उनसे ज्यादा दुनिया उन्होंने देखी है। राधा का छोटा बेटा जो कंपनी में ज्यादा बड़े ओहदे पर नहीं है, बस महीने के 15 हजार कमाता है और पिता जी की पेंशन जो राधा को मिलती है, उसी से मिलाकर घर चला रहा है।

आजकल अँगने के बूढ़े पेड़ और लोग तब तक रखे जाते हैं, जब तक वो फलदार हों। राधा अगर पेंशन न पाती तो उसे वृद्धाश्रम

छोड़ आते, जैसे उसकी बड़ी बहू चाहती थी, क्योंकि उसे सासू मां की रोक टोक बर्दास्त नहीं होती है। बड़े बेटे के परिवार में एक बेटी और एक बेटा भी है। राधा जरा–सा बीमार पड़ती तो उसकी दवाई पानी के लिए तुरंत डॉक्टर बुलाये जाते, भले ही फीस राधा की पेटी से जाती और सेवा करने पर उसकी बहू भुनभुनाती भी।

समय धीरे–धीरे बढ़ता ही रही और बुढापा भी ढलते हुए और ज्यादा असहाय बना देता है। आज राधा ही हालत बिल्कुल सही नहीं है, और डाक्टर की दवा का बिल्कुल फायदा नहीं हो रहा। शायद आज राधा का परलोक जाने का दिन आ गया है। आज उसका बेटा घर पर है।

उसकी बहू फोन पर बात कर रही है– 'हाँ! सासू मां बीमार हैं। लगता है, चल बसेंगी। भगवान लंबी आयु दे, उन्हीं की पेंशन से तो घर चलता है। अगर पेंशन न होती तो मर जाती, दिन भर बोलती रहती है।' आजकल लोग किस कदर स्वार्थी है, इसका अंदाजा शायद ही कोई लगा सके।

रात के आठ बजे हैं। राधा की सांस तेजी से चल रही है, और लगता है उसका अंतिम समय आ गया है।

वह अपने पोते को बुलाती है और पेटी में रखे गहने देकर कहती है, 'बेटा ये तुम्हारे लिए हैं। तुम अपने बुरे और अच्छे दिनों में इसे संभाल कर रखना और प्रयोग करना। कभी अपने माँ–बाप को अकेला मत छोड़ना। वो तो पेंशन भी नहीं पाएंगे।' इतना कहकर राधा परलोकवासी हो जाती है, और उसकी बातें सुनकर उसकी बहू फूट–फूटकर रोने लगती है।

सुबह तक मोहल्ले में राधा के गुजरने की खबर फैल जाती और बूढ़ा बरगद भी अचानक शाम तक गिर पड़ता है। अपने बड़ों को साथ रखिये, क्योंकि वो उस जीवन और समय से गुजरे हैं, जिसमें आप हैं। उनका अनुभव आपके लिए महत्वपूर्ण है, न कि उनका धन।

❖

लघुकथा

चार पैसे की नौकरी

अर्विना
4, ज्योति किरन सोसायटी, ग्रेटर नोएडा
ashisharpit01@gmail.com

सावित्री देवी अपनी पड़ोसन से जब भी मिलती एक ही बात करती– 'बहना, मेरे बेटे को चार पैसे की नौकरी मिल जाय तो मेरा बुढ़ापा संवर जायगा।'

पड़ोसन भी एक ही जवाब देती– 'बहनजी, चिंता मत करो, जरूर लग जायगी नौकरी।'

कुछ महीने गुजर गए। एक दिन लड्डू का प्रसाद हाथ में लिए सावित्री पड़ोसन के घर पहुंच गई।

'गीता! ओ गीता! जल्दी बाहर आओ।'

गीता रसोईघर से बाहर आई, देखा– सावित्री देवी हाथ में लड्डू का पैकेट लिए खड़ी है।

'अरे वाह! लड्डू! सावित्री, लगता है बेटे की नौकरी लग गई।'

'गीता तुम सही समझी। महानगर मुंबई में नौकरी लगी है।'

सावित्री देवी ने सोचा, अब तो बेटे की नौकरी लग ही गई है। इसलिए जल्दी ही शादी की शहनाई भी बजा दी।

पति की पेंशन से गुजर–बसर कर रही सावित्री देवी को मुंबई से बेटे का फोन आया– 'माँ, इस दो पैसे की नौकरी में कुछ भी नहीं बचता इस महानगर में, कुछ रुपये भेज दें।'

सावित्री देवी ने फौरन रुपये भेज दिये। अब तो यह सिलसिला चलता ही रहा, जब भी जरूरत होती दो पैसे की नौकरी का हवाला देकर पेंशन भी झटकने लगा। बेटे–बहू की इस करतूत से सावित्री

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

देवी की हालत बिगड़ने लगी। सावित्री के इलाज की उसे कोई चिंता नहीं, जब भी घर आता कुछ देना तो दूर, बस जो कुछ मिलता उसे बहू–बेटा ले जाते। इन हालातों से लड़ते हुए सावित्री देवी का धीरज आखिर जवाब दे गया।

एक दिन सुबह–सुबह सावित्री देवी का रूदन सुनकर गीता देखने पहुंची। सावित्री देवी दहाड़ें मार कर रो रहीं थी।

'क्या हुआ गीता ?'

'बेटे ने इस घर का सौदा कर दिया है।'

'घर बिकने के बाद तुम कहां रहोगी ? मेरे लाख समझाने पर भी तुम मान कैसे गई ?'

सावित्री सिर झुकाकर बोली– 'जब बाढ़ ही खेत को खाने लगे तो खेत कहां बचेगा।'

'ये तुमने अच्छा नहीं किया! चार पैसे की नौकरी का असली मतलब बेटे को बताया होता! ओह, सावित्री! काश एक पैसे की बचत करना भी बेटे को कभी बैठाकर सिखाया होता, तो ये दिन नहीं देखने पड़ते।

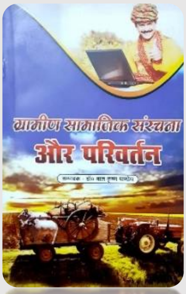

ग्रामीण सामाजिक संरचना और परिवर्तन

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-6-5

संस्करण : 2015, मूल्य : 200/-

छत्तीसगढ़ के आदिवासी एवं गोदना-प्रथा

मनीष कुमार कुर्रे (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग, शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़

manishkumarkurreymkk@gmail.com

विषय प्रवेश : *विश्व के सभी देशों में आदिवासी निवास करते हैं। यह देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासी हैं। प्रारंभ से ही यह दूरस्थ, जंगलों एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते आये हैं और इन्हीं जंगलों एवं निर्जन स्थानों पर जीवनयापन करते आ रहे हैं। विश्व के अधिकांश देशों में आदिवासी निवास करते हैं। आदिवासी मुख्यरूप से भारत के उड़ीसा के कौंध, मध्यप्रदेश के गौण्ड, बैगा, सहरिया एवं भील छत्तीसगढ़ के गौण्ड, माडिया, भतरा तथा उरांव या ओरांव गुजरात के राठवा और राजस्थान के भील एवं भीणा के साथ ही आंध्रप्रदेश, झारखण्ड़, पश्चिम बंगाल में अल्पसंसख्यक है जबकि पूर्वोत्तर में बहुसंख्यक है। इसी क्रम में भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के आदिवासी का नाम लिया जा सकता है, जो पुरातन काल से छत्तीसगढ़ के घने जंगलों में निवासरत हैं।*

छत्तीसगढ भारत का एक जनजातीय बहुल राज्य हैं। छत्तीसगढ में घोषित 42 अनुसूचित जनजाति समूह है। यहाँ मुख्यतः गोंड, हल्बा, मारिया, मुरिया, बैगा, कमार, कोरवां, उरांव आदि जनजातियां निवास करती है। नवीन अनुसंधानों, भौतिक संसाधनों से वंचित आदिवासी अपनी उत्सव, परंपरा, त्यौहार, रीति – रिवाज, प्रथाओं को कायम रखते हैं। आदिवासी समाज देश की मूलधारी से अलग किसी क्षेत्र विशेष में अपनी पैतृक परंपराओं की संभाले हुए विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली को अपनाते हैं। इसी रीति–रिवाज, प्रथाओं में गोदना की प्रथा आदिवासियों में विशेष प्रचलित है।

मुख्य शब्द : गोदना, अंधविश्वास, आदिवासी, परम्परा।

उद्देश्य :

1. आदिवासी कौन है से परिचित होंगे।

2. आदिवासियों के गोदना प्रथा को जानेंगे।
3. बस्तर और रामनामी समाज में गोदना को जानेंगे।

आदिवासी का अर्थ एवं परिभाषा : आदिवासी से तात्पर्य है – आदिवासी, वनवासी, जंगली या आदिमजन, गिरिजन, पहाड़ी जाति। शब्दकोशों में आदिवासी शब्द आदिकाल से निवास करने वाले व्यक्तियों के संबंध में प्रयुक्त होता रहा है। आदिवासी अर्थ है कि यह एक ऐसी स्थानीय समूहों का समुदाय है जो एक सामान्य क्षेत्र में रहते हैं, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं और इनकी एक सामान्य संस्कृति होती है।

परिभाषा :–

(1) डॉ. विवेकी राय के अनुसार :– ''पिछड़े अंचलों, पहाड़ों, वनों के निवासियों को आदिम – आदिवासी माना है।''

(2) डॉ. डी. एन. मजुमदार :– " एक मात्र सामायिक जाति, एक ही भू–प्रदेश में वास्तव्य करने वाले एक ही भाषा बोलने वाले, विवाह, व्यवसाय आदि में एक ही नियम का पालन करने वाले पारस्परिक संबंध और व्यवहार के बारे में पूर्वानुभव पर आधारित निश्चित नियमों का पालन करने वाले पारिवारिक समूह आदिवासी जाति हैं।**"**

आदिवासी : गोदना प्रथा

गोदना प्रथा का आदिवासी समाज में अपना विशिष्ट स्थान है और प्रायः सभी आदिवासियों में यह प्रथा प्रचलित हैं। आदिवासी युवक–युवतियाँ बड़े चाव से अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर गोदना गुदवाते हैं जिनमें तरह–तरह की पशु–पक्षियों की आकृतियाँ होती है। सभी आदिवासी समुदायों के गोदने अलग–अलग होते हैं जिनकी बड़ी सरलता से पहचान हो जाती है। आदिवासी युवतियाँ अपने शरीर के अंगों पर प्रिय या पति का नाम गुदावाना पसंद करती है, जिसे वह मन से चाहती है। गोदना एक ऐसी अलंकरण प्रणाली का नाम है जिसका सीधा संबंध लोक–संस्कृति से जुड़ा है। इसे लोक संस्कार भी माना गया है।

गोदना छत्तीसगढ़ के ग्रामीण समाज में गोदना को समाजिक मान्यता प्राप्त है। यहाँ के बस्तर क्षेत्र के आदिवासी समाज में विवाह के पूर्व कन्याओं के शरीर पर गोदना आवश्यक होता है। जिसके शरीर में गुदना नहीं होता है, उसे समाज में हेय भावना से देखा जाता है।

आदिवासियों के अलावा अन्य सभी जातियों में गोदना कराने का व्यापक प्रचलन है। माना जाता है कि मृत्यु के पश्चात भौतिक जगत की सभी वस्तुएँ या आभूषण इसी लोक में छूट जाते हैं लेकिन गोदना आत्मा के साथ स्वर्ग तक जाता है। गोदना में निहित जादू तथा पराशक्ति पर विश्वास भी गोदना का एक कारण है। सामाजिक, धार्मिक आस्थाओं के अतिरिक्त गोदना की एक मान्यता यौन भावना को जागृत करना और अलंकरणों के रूप में उनके सौंदर्य में अभिवृद्धि भी है। शरीर में गुदवाने की यह प्रक्रिया काफी पीड़ादायक होती है। पहले सुइयों से गुदना कराया जाता था, लेकिन अब मशीनों से गुदना कराने का चलन बढ़ गया है। यहाँ गुदना का कार्य देवार जाति के लोग करते हैं।

गोदना का अर्थ : गोदना का शाब्दिक अर्थ है– चुभोना, गाड़ना, किसी सतह को बार–बार छेदना। शरीर के किसी अंग में स्थायी रूप से अंकित की गयी कलाकृति को गोदना कहा जाता है और इस कला को गोदना कला कहा जाता है। आजकल जो शरीर पर टैटू बनवाते हैं वह इस पारंपरिक कला का ही रूप है। गोदना को आदिवासी अपनी अलंकार मानते हैं। बस्तर के सभी आदिवासी स्त्रियों में गोदना गुदवाने की प्रथा सर्वाधिक प्रचलित हैं। यहाँ तक कि शरीर विकृत हो जाने पर भी इसे अलंकार ही माना जाता है।

गोदना कार्य या विधि :– गोदना का कार्य ओझा, कंजर, बंजारा एवं देवार जाति की महिलाएँ करती हैं, जिन्हें गुदारिन या गुदनारी कहा

जाता है। बस्तर अंचल में बंजारिन स्त्रियाँ ही गोदने का कार्य करती आ रही है। बिंझवार महिलाएँ दोनों पैरों में अँगूठे से लेकर छोटी उंगली तक तीन स्थानों में तीन –2 बिन्दु लगाती है। एड़ी के उपर चारों ओर तीन –2 बिन्दु लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हाथ एवं चेहरे

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पर गोदना गुदवाती हैं। कई बार देवी– देवताओं का भी अंकन धार्मिक दृष्टि से किया जाता है। इसमें पुरूष विशेष रूचि नहीं लेते हैं।

गोदना गोदते समय जड़ी–बूटी के पक्के रंगों का उपयोग किया जाता है। गुदारिन सुई चलाते समय या चुभाते समय बात करती रहती है या कभी–कभी ताना भी मारती है जिससे गुदना गुदवाने वाली महिला का ध्यान दर्द से हट जाये। बीच–बीच में गुदना को सहलाया भी जाता है। गोदना गुद जाने के बाद अंड़ी का तेल के साथ हल्दी का लेप गोदना चिह्न पर लगाया जाता है। सुन्दर गोदना के निशान नारी हृदय को खुशी से भर देता है और वह पीड़ा को भूल जाती है।

गोदना गोदने की प्रथा पीढ़ी–दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है। गोदना का कार्य समान्यतः देवार जाति के लोग करते हैं वैसे कई अन्य जातियों के लोग भी यह कार्य करते हैं। पहले गोदना का कार्य परिवार की कोई बुजुर्ग महिला करती थीं, परन्तु अब इसे व्यावसायिक तौर पर अपना लिया गया है। सरगुजा में मलार जाति की महिलाएँ गोदना का कार्य करती हैं, जिन्हें गोदहारिन या गुदनारी कहा जाता है। गोदना जिस उपकरण से बनाया जाता है, उसे **सुई** या **सुवा** कहा जाता है। गोदना गोदने के लिए तीन या इससे अधिक सुवा एक विशेष ढंग से बांधकर सरसों के तेल में चिकने किए जाते हैं। इन तीन या चार सुइयों के जखना नाम **फोपसा** या **चिमटी** कहा जाता है। काजर बनाने की विधि को काजर बिठाना कहते हैं। काजर बनने के बाद इसे पानी में घोल लिया जाता है, फिर शुरू होती है गोदना बनाने की शुरुआत। इसमें सबसे पहले चीन्हा बनाया जाता है। इस क्रिया को लिखना भी कहते हैं। बाँस की पतली सींक या झाड़ू की काड़ी से गुदनारी गोदना गुदवाने वाले के शरीर पर विशेष आकृति अंकित करती है। तत्पश्चात गुदनारी अंग विशेष पर दाहिने हाथ की कानी उँगली से टेक लेकर अँगूठे और तर्जनी उँगली की सहायता से फोसा की मदद से गोदने गोदती हैं। गोदना पूरा होने के बाद काजर में डूबी जखनादार सुई से उसमें रंग भर दिया जाता है। गोदना गुदने पर अंग में सूजन आ जाती है। इसे दूर करने गोबरपानी और सरसों का तेल का लेप लगाया जाता है। गोदना वाला शरीर का स्थान पके न इसके लिए हल्दी और सरसों का तेल लगाया जाता है। करीब सात दिनों में गोदे हुए स्थान की त्वचा

निकल आती है और शरीर की सूजन खत्म हो जाती है। वैसे तो गुदना गुदवाने का काम साल भर चलता है, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में गोदना गुदवाना उचित नहीं है। इस दौरान गोदना पकने का सबसे ज्यादा खतरा होता है। गोदना गुदवाने का सबसे अच्छा समय शीत ऋतु माना जाता है।

गोदना का इतिहास : विभिन्न संस्कृतियों के इतिहास मे टैटू व गोदना का उल्लेख पाया जाता है। पिछली कई शताब्दियों से मानव शरीर पर टैटू (गोदना) बनवाते आ रहा है। 6000 ईसा पूर्व से गोदना का उल्लेख प्राप्त होता है। 1300 ईसा से पहले मिश्र में गोदना गुदाने की प्रथा प्रचलित थी। इसी के आसपास साइबेरिया में भी गोदना का प्रचार–प्रसार था। वर्तमान में जो टैटू बनवाया जा रहा है वह इसी गोदना कला का ही एक रूप है। सबसे प्राचीन मानव शरीर जिसमें टैटू पाया गया वह "Iceman" का है, जो कि लगभग 5300 वर्ष पुराना हैं जिसे नार्थ इटली के पहाड़ों पर खोजा गया है। पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार गोदना आज की खोज नहीं है, अपितु हजारों वर्ष पूर्व से मनुष्य इस कला को जान रहा है।

गोदना के प्रकार : छत्तीसगढ़ समाज में अलग–अलग जातियों में गोदना गुदवाने का ढंग अलग–अलग होता है। कुछ जाति में अलग चिन्हों को गदिवाया जाता है, जो इस जाति की अलग पहचान बन जाते हैं इस प्रकार उरांव गोदना, कोरवां गोदना गोंड गोदना। यह गोदना विशेष चिह्नों, आकृतियों, गोत्र चिह्नों के आधार पर विभक्त होते हैं। उरांव गोदना की विशेषता है माथे और कनपटी पर तीन रेखाओं वाला गोदना। गोड़ गोदना में महिलाएँ दोहरा जट गुदवाती हैं। इसमें पहले करेला चानी

गोदा जाता है, फिर उसकी ऊपरी सतह पर डोरा गोदा जाता है। उसके ऊपर दोहरा जट गोदा जाता है। अगल–बगल में फूल बनाये जाते हैं। फिर इसमें गोंड़ जाति के गोदना की पहचान बनती है। मंझवार जाति में जट गोजना का प्रचलन है। इनमें सबसे पहले सिकरी या लौंग फूल ऊपर थाम्हा खूरा सबसे ऊपर जट गोदा जाता है। यह मंझवार जाति की पहचान है। इसी प्रकार कंवर जाति में पहले करेला चानी फिर सिकरी फिर लवंग फूल उसके ऊपर थाम्हा खूरा और सबसे ऊपर सादा हाथी गोदा जाता है। रजवार गोदना में पांव और बांह पर हाथी गोदना गुदवाने की प्रथा है। रजवान गोदना में छंदुआ हाथी होता है। जनजातीय गोदना के प्रकारों, गोत्र चिह्नों का ज्ञान रहने पर जाति विशेष की महिलाओं की पहचान गोदना कला के आरेखन से की जा सकती है।

गोदना गीत : गोदना गीत अपनी बानगी में अन्य लोकगीतों से बिल्कुल भिन्न है। यह सस्वर तो गाया जाता है परन्तु इसमें संगीत वृंद की आवश्यकता नहीं होती है। यह प्रायः गुदहारियों के द्वारा गाया जाता है। देवार महिलाएँ इस कार्य में पारंगत हैं। गोदना लोकगीत गाए जाने की परंपरा देवार गुदहारियों में अधिक प्रचलित है। देवारिनों द्वारा गाए जाने वाले गोदना गीत पारंपरिक लोकगीत की श्रेणी में आते हैं। उन गीतों के कवियों अथवा रचनाकारों की विषय में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। गोदना लोकगीत के स्वरूप विस्तार का अवलोकन निम्नलिखित रुप से किया जा सकता है –

गोदना गोदा ले रीठा ले ले ओ
आय हे देवारी तोर गांव म।
आनी बानी के गोदना मैं गोदथौं ओ,
आके गोदा ले मोर साथ म।
रइही चिन्हारी तोर जाबे ससुरार म,
गोदना गोदा ले रीठा ले ले ओ।।...

आदिवासियों में गोदना का महत्व : इस संबंध में कई किवदंतियाँ प्रचलित हैं। कई जनजातियों की मान्यता है कि गोदना कराने से नजर नहीं लगती मृत्यु के पश्चात सभी आभूषण उतार लिए जाते हैं किन्तु गोदना मृत्यु पर्यन्त साथ रहती है, जिसके कारण इसे अमर श्रृंगार भी कहा जाता है। एक मान्यता यह भी है कि गोदना गुदवाने से स्वर्ग में स्थान मिलता है और परमात्मा गोदना वाली आत्मा को

पहचान लेते हैं। जनजातीय मान्यता के अनुसार बिना गोदना गुदवाए नर–नारी को मृत्यु के पश्चात भगवान के समक्ष सब्बल से गुदवाना पड़ता है। स्वास्थ्य के दृष्टि से गोदना के कारण स्त्रियों को गठिया रोग नहीं होता और कई बुरी शक्तियों से गुदना उनकी रक्षा करती है।

रामनामी समाज में गुदना : छत्तीसगढ़ के रामनामी समुदाय में गोदना के प्रति विशेष आकर्षण है। इस समाज को लोगों का निवास मुख्यतः रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़ सारंगढ़ जांजगीर, मालखरौद, चन्द्रपुर, कसडोल और बिलाईगढ़ के करीब तीन सौ ग्रामों में है । इनकी जनसंख्या लगभग पाँच लाख के ऊपर है। रामनामी समाज के लोग अपने चेहरे समेत पूरे शरीर में राम का नाम गुदवा लेते हैं। ऐसा ये अपनी राम के प्रति गहरी भक्ति के कारण करते हैं। शरीर पर राम का नाम गुदवाने का प्रचलन इस समाज में कब से शुरु हुआ है, इसकी सटीक जानकारी कहीं उपलब्ध नहीं हैं, परंतु इस समाज के बुजुर्गों का कहना है कि हजारों वर्षों से उनके पूर्वज अपने शरीर पर राम नाम गुदवाते आ रहे हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी से यह परम्परा चली आ रही है। रामनामी समाज में लड़का पैदा होने पर निश्चित उम्र में एक संस्कार के रूप शरीर पर राम नाम गुदवाया जाता है, लेकिन लड़कियों के शरीर पर राम नाम विवाह के बाद ही गुदवाने की प्रथा है। पहले रामनामी समाज के लोग पूरे शरीर चेहरे यहाँ तक की सिर में भी राम नाम गुदवाते थे, लेकिन समय के साथ अब लोगों में परिवर्तन आया है। अब समाज के युवा सिर्फ माथे, कलाई या शरीर के किसी एक अंग में गुदवाते हैं। इस समाज का हर समारोह श्रीराम पूजा तथा रामायण के आधार पर होता है। विवाह आडंबर विहीन व बगैर किसी तामझाम के होता है। कन्या पक्ष से किसी प्रकार का कोई दहेज नहीं लिया जाता रामायण को साक्षी मानकर समुदाय का प्रमुख व्यक्ति जयस्तंभ के सात फेरे दिलाकर पति–पत्नी घोषित करता है। इनका संत समागम रामनवमी और पौष एकादशी से त्रयोदशी तक होता है। बिलासपुर के शबरी नारायण में माघ मेला लगता है।

बस्तर की गुदना प्रथा : बस्तर क्षेत्र के आदिवासी समाज में गुदना गुदवाना एक सामाजिक प्रथा है यहाँ महिलाएँ गुदना बड़ी ललक के साथ गुदवाती हैं । यही कारण है कि गुदना प्रथा आदिवासी समाज में पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ रही है। समाज में गोदने का कार्य माँ या परिवार में कोई बढ़ी–बूढ़ी महिला करती है, जिसे गुदनारी भी कहा जाता है। बस्तर के आदिवासी समाज में विवाह के पूर्व कन्याओं के अंगो का गुदना आवश्यक है। यदि किसी लड़की के शरीर पर गुदना नहीं होता है तो विवाह के समय उसका ससुर लड़की के पिता से इसके बदले में क्षतिपूर्ति वसूलता है। विवाह पूर्व गुदना को माता द्वारा प्रदत्त गुदा कहा जाता है। जबकि विवाह के पश्चात होने वाले गुदना को ससुराल परिवार नारा प्रदत्त गुदना कहा जाता है। इस समाज में गोदना के संबंध में अनेक मिथक, धार्मिक वं सामाजिक मान्यताएँ जुड़ी हैं। इसके मुताबिक जो महिलाएँ अपने शरीर पर गोत्र चिह्न गुदवाती हैं, उनके पूर्वजों की मृत आत्माएँ संकट की घड़ी में उनकी रक्षा करती हैं। इसी प्रकार जो महिलाएँ अपने दाहिने कंधे और छाती में किसी देवी– देवता को प्रतीक गुदवाती हैं, उसे कभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकता है। जो महिलाएँ अपने पैरों में गोदना गुदवाती हैं उसे स्वर्ग की सीढ़ी चढने में जरा सी भी परेशानी नहीं आती है। जो महिलाएँ अपने घुटनों के ऊपर सामने की ओर गुडना गुदवाती हैं, उनके पैरों में घोड़ों की सी शक्ती होती है।

गोदना प्रथा और वर्तमान स्थिति : एक समय था जब आदिवासियों में गोदना प्रथा का प्रचलन अधिक था अब धीरे–धीरे यह प्रथा दम तोड़ती जा रही है। नए पीढ़ी के लोग इसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। वर्तमान में कुछ ही लड़कियाँ या महिलाएँ गोदना (टैटू) बनवाती है वह भी

छोटा–मोटा केवल फैशन के लिए होता है। पूरे शरीर पर गोदना गुदवाना वर्तमान पीढ़ी इसे सुन्दरता को बिगाड़ना और अंधविश्वास के अलावा कुछ नहीं मानते हैं। चाहे जो भी हो लेकिन आदिवासी महिलाएँ आज भी इस प्रथा को जीवित रख अपनी संस्कृति को बचाये रखने में सफल रही हैं। आज कल गोदना के नए–नए रूप देखने को मिल रही है जिसमें से एक कपड़ों पर गोदना की कला प्रचलित होते जा रही है साथ ही इससे आदिवासी स्त्रियाँ आर्थिक सबल भी हो रही हैं।

निष्कर्ष : अंततः कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ के आदिवासी गोदना प्रथा अमर श्रृंगारिक गहना है। यादगार, प्रतीक चिह्न, रोगों से मुक्ति और दर्द निवारण का सार्थक उपाय माना गया है। गोदना एक प्राचीन कला है जिसका उपयोग शारीरिक सुन्दरता के लिए किया जाता है। समय व आधुनिकीकरण का प्रभाव भी इस पर पड़ा। 1950 से 1990 तक ऐसा भी दौर आया जब आदिवासियों को प्रेरित किया गया कि वे गोदना नहीं कराए क्योंकि यह अशिक्षित, पिछड़ेपन और अंधविश्वास की निशानी है लेकिन यह प्रथा अपनी अस्तित्व बचा पाने में सफल रही है।

संदर्भ :

(1) आदिवासी लोक कथाओं में लोक विश्वास, सुशील कुमार शैली, शोधपत्र–2015, पृष्ठ – 29

(2) छत्तीसगढ़ लोक संस्कृति कला और साहित्य, प्रकाश मनु और डॉ0 सुनीता, पृ– 50

(3) बस्तर एक अध्ययन, रामकुमार बेहार, 1994, पृष्ठ – 33

(4) वही.... पृष्ठ – 57

(5) बस्तर का आदिवासी संघर्ष, रामकुमार बेहार, 1987, पृष्ठ – 135

(6) छत्तीसगढ़ के गोंड़ जनजाति में गोदना कला के स्वरूप में परिवर्तन का अध्ययन, बैनर्जी शिप्रा और ताम्रकर ऋचा, शोधपत्र, अप्रैल 2019, पृष्ठ – 492

(7) छत्तीसगढ़ में गोदना प्रथा, अक्टूबर 2015, लेखक, गीतकार, शोधकर्ता– अजय कुमार चतुर्वेदी, पृष्ठ– 1,4

(8) raipurdunia.com ,लेख – अरविन्द मिश्रा

(9) बिहनिया पत्रिका, संस्कृति विभाग, रायपुर, अक्टूबर–2015, पृष्ठ – 39

(10) गोदना : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ, अक्टूबर 2019, मुश्ताक खान, हस्तशिल्प आदिवासी एवं लोक कला पर शोध लेखन, पृष्ठ – 1,4

❖

असम के सांस्कृतिक प्रतीक

वीरेन्द्र परमार
103, नवकार्तिक सोसायटी, प्लाट–13, सेक्टर–65, फरीदाबाद –121004
veerendraparmarfaridabad@gmail.com

'असम' शब्द के उद्‌भव के बारे में विद्वानों में मतभिन्नता है 'कुछ विद्वानों की मान्यता है कि पहाडों और घाटियों के कारण यहाँ की भूमि सम नहीं है, इसलिए इस प्रदेश का नाम असम पड़ा।' इन विद्वानों ने संस्कृत के "असम" शब्द को अपनी मान्यता का आधार बनाया है। विद्वानों के एक दूसरे वर्ग का मत है कि 'असम' शब्द संस्कृत के 'असोमा' शब्द से बना है जिसका अर्थ है अनुपम अथवा अद्वितीय, परन्तु अब अधिकांश विद्वान "अहोम" शब्द से असम की व्युत्पत्ति मानते हैं। लगभग छह सौ वर्षों तक यहाँ अहोम राजाओं का शासन था। इनकी मान्यता है कि 'अहोम' शब्द ही कालांतर में टूटकर असम हो गया। आस्ट्रिक, मंगोलियन, द्रविड़ और आर्य जातियां समय–समय पर आकर यहाँ बसीं और असमिया संस्कृति में घुलमिल गईं। सांस्कृतिक दृष्टि से असम अत्यंत समृद्ध प्रदेश है। आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में भी असमवासी अपने सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत सम्मान करते हैं।

सत्र : भागवतपुराण में 'सत्र' शब्द का अनेक बार उल्लेख किया गया है। भागवतपुराण में 'सत्र' शब्द का प्रयोग भक्तों की सभा के अर्थ में किया गया है, लेकिन असम के नव वैष्णव धर्म में इस शब्द का भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव धर्म प्रचार के लिए असम के विभिन्न अंचलों में गए। इस दौरान वे जहाँ–जहाँ रहे उन स्थानों को बाद में सत्र के रूप में पहचान मिली। श्रीमंत शंकरदेव के जीवनकाल में भक्त पेड़ के नीचे या खुले में इकट्ठे होते थे। उनके जीवनकाल में भक्तों के स्थायी परिसर में रहने का चलन शुरू नहीं हुआ था, हालांकि कई स्थानों पर अस्थायी प्रार्थना घर जरूर बनाये गए थे। शंकरदेव ने सर्वप्रथम बरदोवा नामक स्थान पर सत्र

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

की स्थापना की। इस सत्र में एक प्रार्थना घर अथवा नामघर बनाया गया जहाँ नाम स्मरण (कीर्तन) किया जाता था। भगवान के नाम स्मरण के साथ ही वहां पर धार्मिक व्याख्यान भी होता था। बाद में शंकरदेव के शिष्य माधवदेव ने बरपेटा सत्र की स्थापना की और दैनिक प्रार्थना सेवा और धार्मिक चर्चा की परंपरा आरंभ की। असम में स्थापित सत्र को सामान्य भाषा में वैष्णव मठ कहा जा सकता है। पूर्वोत्तर भारत में वैष्णव धर्म के प्रसार और हिंदू धर्म व संस्कृति के संरक्षण में इन सत्रों का अवदान उल्लेखनीय है। इन सत्रों के माध्यम ने श्रीमंत शंकरदेव ने सामाजिक सद्भाव, एकता और भाईचारे की भावना को सुदृढ़ किया। सामान्यतः सत्र चारदीवारी से घिरे चार प्रवेश द्वार वाला क्षेत्र है। इस चारदीवारी के बीच में आयताकार प्रार्थना कक्ष (नामघर या कीर्तनघर) होता है। इसके पूर्वी भाग में एक अतिरिक्त स्वतंत्र कक्ष होता है जिसे मणिकूट (गहना घर) कहा जाता है। इसके पवित्र गर्भगृह में एक लकड़ी का चतुष्कोणीय आसन होता है जिसमें चार शेरों की नक्काशीदार आकृतियाँ बनी होती है। इस आसन में पूजा के मुख्य उद्देश्य से पांडुलिपि में लिखी भागवत पुराण की प्रतिलिपि या एक मूर्ति रखी जाती है। आरंभ में सत्र लकड़ी या बांस के बने होते थे लेकिन बाद में ईंट और सीमेंट का प्रयोग होने लगा। नामघर के चारों तरफ झोपड़ियां होती हैं जिन्हें 'हाटी' कहा जाता है। यहाँ भकत (भक्त) रहते हैं। सत्र के पूर्वी ओर की हाटी में 'अधिकार' और अन्य उच्च अधिकारी रहते हैं। सत्र गाँवों में स्थापित नामघर के माध्यम से वैष्णव धर्म का विस्तार करते हैं। सत्र केवल धार्मिक संस्था नहीं है अपितु पूर्वोत्तर में सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नयन एवं जन जागरूकता उत्पन्न करने में भी सत्रों ने महती भूमिका का निर्वाह किया है। सत्रों में नृत्य की एक विधा विकसित हुई है जिसे सत्रिय नृत्य कहा जाता है। असम सत्र महासभा सभी सत्रों का पितृ संगठन है। वर्तमान में राज्य सरकार उनके माध्यम से उनकी गतिविधियों का समन्वय करती है। सत्र के कामकाज की देखभाल और निगरानी के लिए एक सत्राधिकार और उनके अनेक सहयोगी होते हैं। इन पदों पर बैठे व्यक्ति की एक निश्चित जिम्मेदारी होती है। सत्रों के संचालन के लिए अनेक अधिकारी होते हैं जिन्हें विभिन नामों से संबोधित किया जाता है–

1. **अधिकार–** अधिकार सत्र के धार्मिक और अध्यात्मिक गुरु और प्रमुख होते हैं। उनके नेतृत्व में ही पूजा–अर्चना और समस्त अनुष्ठान संपन्न होते हैं। उनको 'सत्रीय' अथवा 'महंत' नाम से भी जाना जाता है।
2. **डेका अधिकार–** डेका अधिकार सत्र के धार्मिक और अध्यात्मिक गुरु के सहयोगी और सह–प्रमुख होते हैं। 'अधिकार' के बाद सत्र में उनका स्थान दूसरा होता है। अधिकार के निधन होने अथवा उनकी अनुपस्थिति में डेका अधिकार ही सत्र का संचालन करते हैं।
3. **भकत –** यूँ तो सत्र में शिक्षा ग्रहण करने वाले किसी भी शिष्य को भकत अर्थात भक्त कहा जा सकता है, परन्तु सही अर्थों में भकत वही होता है जो सत्र की विचारधारा का प्रचार–प्रसार करता हैं अथवा सत्र में रहकर उसके परिचालन में मदद करता है। सत्र के अन्दर केवल अविवाहित भकत ही रह सकते हैं।
4. **शिष्य–** सत्र के अन्य भक्तों को शिष्य कहा जाता है। असम अथवा देश के अन्य राज्यों के अनेक वैष्णव परिवार सत्र के प्रति अनुराग रखते हैं और आर्थिक मदद करते हैं। उन्हें भी शिष्य माना जाता है, भले ही उन्होंने कोई सत्र शिक्षा ग्रहण की हो अथवा नहीं। बड़े सत्र में सैकड़ों ब्रह्मचारी और गैर ब्रह्मचारी भक्त निवास करते हैं।

नामघर : नामघर एक सामुदायिक प्रार्थना कक्ष है जहाँ पर एकत्रित होकर असम के हिंदू धर्मावलंबी ईश्वर के नाम का संकीर्तन करते हैं। यह असम के महान कवि श्रीमंत शंकरदेव की एक अनूठी रचना है। उन्होंने नगांव जिले के बोरदोवा में पहला नामघर स्थापित किया था। असमिया भाषा में श्नामश का अर्थ प्रार्थना और श्घरश का अर्थ घर होता है। नामघर में कुछ अधिकारी होते हैं जिन्हें मेधी, बुजंदर, बायन, नामघरिया, बिलोनिया कहा जाता है। असमिया समाज में इन अधिकारियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ पर लोग कला और शिल्प का प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं। नामघर का उपयोग सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए भी किया जाता है। सामान्यतः नामघर आयताकार होते हैं। पहले नामघर की छत टीन की होती थी जिसमें लकड़ी अथवा बांस के खम्भे लगे होते थे लेकिन अब छत और खम्भे

कंक्रीट के निर्मित होते हैं। इस हॉल में आमतौर पर एक बाहरी दीवार होती है जिसका मुख्य द्वार पश्चिम छोर पर होता है। बाहरी दीवार के चारों ओर एक बरामदा होता है जिसमें उत्तर और दक्षिण की तरफ खिड़कियां और छोटे प्रवेश द्वार होते हैं। खंभों की दो समानांतर पंक्तियाँ आमतौर पर लंबाई के साथ चलती हैं। परंपरागत रूप से फर्श मिटटी के होते थे लेकिन अब कंक्रीट के होते हैं। एकशरण परंपरा के अनुसार नामघर का उपयोग प्रार्थना कक्ष के रूप में किया जाता है। भक्त पंक्तियों में बैठते हैं जो पूर्व की ओर नहीं बल्कि उत्तर और दक्षिण में एक दूसरे के सामने बैठते हैं। हॉल के पश्चिमी छोर में सामान्यतः दरवाजे और खिड़कियां नहीं होती हैं। प्रायः इस छोर पर एक स्वतंत्र कमरा बना होता है जिसे 'मनिकुत' कहा जाता है। इसे पश्चिमी असम में 'भजघर' भी कहा जाता है। इसमें कोई खिड़की नहीं होती है। महत्वपूर्ण वस्तुओं के संग्रहालय के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। यह कमरा मूल नामघर संरचना से अलग निर्मित होता है। नामघर असम और विशेष रूप से हिंदू धर्म के एकसरण संप्रदाय से संबंधित है। इसमें पूज्य देवता या गुरु–आसन (गुरु का आसन) का प्रतिनिधित्व करने वाली मूर्तियाँ होती हैं। पवित्र ग्रन्थ को गुरु आसन पर रखा जाता है। गुरु आसन शाब्दिक रूप से गुरु का आसन है जो सात स्तरीय, त्रिकोणीय, लकड़ी का सिंहासन होता है जो कछुआ, हाथी, मयूर या ड्रैगन आकृति और अन्य काष्ठशिल्प से सुशोभित होता है। नामघर में सार्वजनिक बैठकें आयोजित की जाती हैं, नाटकों का मंचन किया जाता है और भाओना की प्रस्तुति की जाती है। असम के प्रत्येक गाँव में कम से कम एक नामघर अवश्य होता है। दामोदर देव, माधव देव और श्रीमंत शंकरदेव जैसे वैष्णव संतों ने नामघर का शुभारम्भ किया था। नामघर में प्रातःकाल में नाम जप किया जाता है। वहां रखी होराई (एक प्रकार का बर्तन) में सुपारी और पान पत्र चढ़ाया जाता है। नामघर के रखरखाव के लिए वहां पर भगत होते हैं। अपने पारंपरिक परिधान धारण कर गाँववासी वहां जाते हैं और ईश्वर के नाम का संकीर्तन करते हैं। महिलाएं मेखला चादर और पुरुष धोती–कुर्ता पहनते हैं। महिलाएं सर ढककर ही नामघर में प्रवेश करती हैं। बांस के बने आसान पर बैठकर लोग करतल ध्वनि के साथ नाम कीर्तन करते हैं। किंवदंती के अनुसार– इसका उद्भव काल 1670 से 1681 के बीच

माना जाता है। यह काल अहोम साम्राज्य का सबसे कठिन काल था। उस समय अहोम राज्य का राजा 'लोर राजा' था। राजा ने अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अपने सभी राजकुमारों को अपंग बनाने का आदेश दे दिया था। उन राजकुमारों में से एक राजकुमार जिसका नाम गदापाणी था वह लोरा राजा के राज्य से भागकर नागा पहाड़ पर जाकर छिप गया। नागा पहाड़ घने जंगल से घिरा हुआ था। उस जंगल में एक साधु आश्रम बनाकर अपने शिष्यों के साथ रह रहे थे। उसी आश्रम में राजकुमार ने आश्रय लिया। राजकुमार बहुत समय तक उस आश्रम में रहे जहाँ आजकल आठखेलिया नामघर है। 1681 में जब वह राजकुमार राजा बना तब वह आश्रम को खोजते हुए जंगल में आया लेकिन वहां पर साधु नहीं मिले। उसने साधु की याद में वहां पर नामघर का निर्माण कराया।

गमुछा : 'गमुछा' असमिया लोगों के अनेक सांस्कृतिक प्रतीकों में से एक है। हिंदीभाषी जिसे गमछा कहते हैं, असमिया लोग इसे गमुछा या गमोछा कहते हैं। यह लगभग सभी सामाजिक–धार्मिक समारोहों का एक अभिन्न अंग है। हल चलाते किसान, चरवाहा और मजदूर इसका उपयोग करते हैं। गमुछा कपड़े का एक सम्मानार्थ टुकड़ा है जिसे आमतौर पर असम में अपने अतिथियों और विशिष्ट जनों के स्वागत–सत्कार के लिए इस्तेमाल किया जाता है। गमुछा हाथ से बुने हुए सूती कपड़े का एक सफेद आयताकार टुकड़ा होता है जिसमें मुख्य रूप से तीन तरफ लाल बॉर्डर और चौथी तरफ लाल बुने हुए रूपांकन (लाल के अलावा अन्य रंगों का भी उपयोग किया जाता है) होते हैं। गमोछा के अनेक उपयोग हैं। इसका इस्तेमाल तौलिया के रूप में भी किया जाता है। बिहू नर्तक इसे अपने सिर के चारों ओर लपेटकर बाँध लेते हैं और नृत्य करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रार्थना घर में भी इसका उपयोग होता है। यह सामाजिक सम्मान का सूचक है। गमुछा को 'बिहूवान' के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि बिहू के दौरान प्यार के प्रतीक के रूप में इसका आदान–प्रदान किया जाता है। यह गौरतलब है कि किसी भी धार्मिक और जातीय पृष्ठभूमि का भेदभाव किए बिना सभी असमिया लोगों द्वारा समान रूप से गमुछा का उपयोग किया जाता है।

जापी : 'जापी' असम की एक पारंपरिक शंक्वाकार टोपी है, जिसे बांस या बेंत और तोकौपात से बनाया जाता है। तोकौपात एक प्रकार का बड़े ताड़ का पत्ता होता है। 'जापी' शब्द की उत्पत्ति 'जाप' से हुई है जिसका अर्थ है तोकौ पत्तों का एक बंडल। बिहू नृत्य की एक शैली में भी जापी को धारण किया जाता है। समारोहों और उत्सवों में सम्मान के प्रतीक के रूप में जापी का आदान–प्रदान किया जाता है। इसे सजावटी सामग्री के रूप में विशेष रूप से स्वागत द्वार के सामने भी रखा जाता है। खेतों में काम करते समय धूप और बारिश से सुरक्षा के लिए किसानों द्वारा जापी का इस्तेमाल किया जाता है।

अम्बूवासी मेला : असम के गुवाहाटी नगर में स्थित कामाख्या मंदिर एक प्रमुख शक्तिपीठ है। यहाँ प्रति वर्ष एक विशाल मेला लगता है जिसका नाम अम्बूवासी (अम्बूवाची) मेला है। इस मेले का आयोजन प्रति वर्ष मानसून के दौरान मध्य जून में किया जाता है। इस समय तीन दिनों तक मंदिर बंद रहता है। यह तंत्र साधना का सबसे अनुकूल समय है। इस मेले में असम और देश के विभिन्न भागों से हिंदू तीर्थयात्री, तांत्रिक और साधक आते हैं। इस शक्तिपीठ के संबंध में अनेक पौराणिक आख्यान प्रचलित हैं। माता के सभी शक्तिपीठों में से कामाख्या शक्तिपीठ को सर्वोत्तम कहा जाता है। माता सती के प्रति भगवान शिव का मोह भंग करने के लिए भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से माता सती के मृत शरीर के 51 भाग किए थे। जिस–जिस जगह पर माता सती के शरीर के अंग गिरे वे शक्तिपीठ कहलाए। कहा जाता है कि यहां पर माता सती का गुह्वा अर्थात योनि भाग गिरा था, उससे कामाख्या महापीठ की उत्पत्ति हुई। कहा जाता है कि यहां देवी का योनि भाग होने की वजह से यहां माता रजस्वला होती हैं। एक कथा प्रचलित है कि नरकासुर देवी कामाख्या की सुंदरता पर मोहित होकर उनसे विवाह करना चाहता था, परंतु देवी कामाख्या ने उसके सामने एक शर्त रख दी। कामाख्या देवी ने नरकासुर से कहा कि अगर वह एक ही रात में नीलांचल पर्वत से मंदिर तक सीढ़ियां बना पाएगा तो वह उससे विवाह करेंगी। नरका ने देवी की बात मान ली और सीढ़ियां बनाने लगा। देवी को लगा कि नरका इस कार्य को पूरा कर लेगा, इसलिए उन्होंने एक तरकीब निकाली। उन्होंने एक कौवे को मुर्गा बनाकर उसे भोर से पहले ही बांग देने को कह दिया। नरका को लगा कि वह शर्त पूरी नहीं कर

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पाया है, परंतु जब उसे सच्चाई का पता चला तो वह उस मुर्गे को मारने के लिए दौड़ा और ब्रह्मपुत्र के दूसरे छोर पर जाकर उसका वध कर डाला। बाद में मां भगवती की माया से भगवान विष्णु ने नरकासुर का वध कर दिया। नरकासुर शर्त के अनुसार देवी से विवाह नहीं कर सका। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आज का 'कामाख्या मन्दिर' नरकासुर द्वारा निर्मित वह मन्दिर ही है। इसी मन्दिर में अम्बूवासी मेले का आयोजन किया जाता है। कहा जाता है कि योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने इस शक्तिपीठ में निवास करके देवी के दर्शन प्राप्त किए थे। अम्बूवासी यहाँ का सबसे बड़ा धार्मिक उत्सव है।

असम साहित्य सभा : असम साहित्य सभा के महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि यदि इसके सम्मेलन में मुख्यमंत्री को आमंत्रित किया जाता है तो मुख्यमंत्री इस आमंत्रण को अपने लिए गौरव की बात समझते हैं। असम साहित्य सभा असम का एक गैर सरकारी, गैर लाभकारी साहित्यिक संगठन है। असमिया साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से दिसंबर 1917 में इसे स्थापित किया गया था। वर्तमान में असम और राज्य के बाहर इसकी लगभग एक हजार शाखाएं हैं। इसका केंद्रीय कार्यालय जोरहाट में है । असम साहित्य सभा का सम्मेलन दो साल में एक बार आयोजित किया जाता है। असम साहित्य सभा का पहला सम्मेलन शिवसागर (असम) में आयोजित किया गया था। यह एक बड़ा साहित्यिक उत्सव बन गया है जिसमें हजारों लोग भाग लेते हैं। इस सम्मेलन के अवसर पर राज्य के लेखक एकत्रित होकर अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं और विभिन्न ज्वलंत समस्याओं पर विचार–विमर्श करते हैं। 'असम साहित्य सभा पत्रिका' असम साहित्य सभा की आधिकारिक पत्रिका है। इसका प्रथम अंक अक्टूबर 1927 में प्रकाशित हुआ था जिसके संस्थापक संपादक चंद्रधर बरुआ थे। असम साहित्य सभा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. असमिया भाषा, साहित्य और राज्य की संस्कृति का सर्वांगीण विकास करना।
2. शब्दकोश, शोध पत्र, साहित्यिक आलोचना, असम के महान लेखकों की समग्र रचनावली आदि का प्रकाशन करना।

3. असम राज्य के प्राचीन साहित्य का संकलन, संरक्षण और अनुसंधान करना।
4. उन योग्य लेखकों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, जो वित्तीय कठिनाई के कारण अपनी पुस्तकें और साहित्य प्रकाशित करने में समर्थ नही हैं।
5. राज्य के संगीत, कला और मूर्तिकला को बढ़ावा देना।
6. असमिया भाषा और साहित्य का प्रचार करने के लिए पत्रक, पुस्तिका आदि का प्रकाशन करना।
7. साहित्य और संस्कृति के आदान– प्रदान को बढ़ावा देना।
8. असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिए कार्य करना ।

ख़्वाहिशें
बृजेन्द्र अग्निहोत्री
आईएसबीएन : 978-81-929060-4-1
संस्करण : 2015, मूल्य : 300/-

संस्मरण

कभी ना भूखा सोया, ना अभाव में रोया!

राजेश कुमार (मूर्तिकार)
rajeshraj448@gmail.com

ललित कला व साहित्य का साहचर्य हमेशा की तरह पूर्ण लालित्य को उद्घाटित करता रहा है। आरेखन हो या दृष्टांत चित्र अथवा इलस्ट्रेशन साहित्य के किसी गद्य या पद्य का सम्पूरक होता है। यह बात बचपन के आखर पोथी चित्र से देखते आ रहे हैं। किन्तु जहाँ तक मेरा नाता विशेषकर एक कठोर और त्रिआयामी स्वरूप मूर्तिकला से संबद्ध रहा और साहित्य के ऐसे मनीषियों से जिन्होंने एक लम्बी लकीर खींच कर साहित्य के क्षेत्र को समृद्ध करते हुए ऐतिहासिक कार्य किए जिनमें बाबा नागार्जुन, जानकी वल्लभ शास्त्री, त्रिलोचन शास्त्री, डा नामवर सिंह, पद्मश्री पं. विद्यानिवास मिश्र आदि शामिल है। यूं तो सोचा ना था एक लम्बी शृंखला तैयार होगी। किन्तु बाबा नागार्जुन से 1998 में जब खाजासराय स्थित जयेष्ठ पुत्र शोभाकान्त जी के आवास पर स्वास्थ्य लाभ ले रहे, प्रथम दर्शन हुए वही सम्मुख पाकर मेरा दर्शन ही बदल गया। अद्भुत क्षण था वह ...अति विलक्षण, दिव्य! बाबा खाट पर लेटे मेरे आने की सूचना ने उन्हें उठाया। खाट पर बैठे बाबा इस कदर प्रतीत हो रहे थे की कृशकाय काया में धंसा एक ठोस शिलाखंड गोलक शीष और जिसका दिव्य चौड़ा ललाट। उनके चरण स्पर्श करते ही झुके सिर गतिशील हो मेरी आंखों से साक्षात्कार करने लगी। यही वह क्षण था जब उनकी आंखों से एक

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

दिव्य ज्योति स्वरूप उर्जा मेरे आखों तक पहुंचा और सीने आकर ठहर गया जहाँ सहसा पहुंचे हथेली ने भी महसूस किया। एक फिल्म की भांति दृश्य होते हुए इस अनुभूति को लिए चार किमी अपने गृह जनपद दरभंगा आ गया। फिर सिलसिला आने जाने का सप्ताह भर बना रहा। जब वो बैठते विभिन्न कोणों से रेखांकित करता, जब वो विश्राम करते तो बनारस के गंगा की माटी में उन्हें गढ़ता रहता।

जून का महीना, गरमी अलग। सुबह जाना। दोपहर का भोजन वहीं परिवार के सदस्यों के साथ सम्मानजनक तरीके से करता, पर थाली स्वयं धोता। क्योंकि अंतःकरण में सभी छोटे–बड़े सदस्यों के प्रति विशेष सम्मान था। लौटना गोधुली बेला में ही होता। सप्ताह भर की इस यात्रा में बाबा यानि बैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' के अनेकों रेखाचित्र व एक मूर्ति शिल्प का निर्माण कर संग्रहित करने का यह पहला सुअवसर भी था तो प्रेरणाप्रद भी।

जब काशी लौटा सारे रेखाचित्र व पोट्रेट मूर्ति के साथ तब फाइन आर्ट्स में चतुर्थ वर्ष के दरम्यान ललित कला अकादमी के द्वारा प्रायोजित एकल प्रदर्शनी में प्रदर्शित ये कलाकृतियां खासा चर्चित हुईं, और विशेष रूप से हिन्दी विभाग के विद्वानों से और नाता गहरा होता गया। यूं तो ललित कला से जुड़ना भी असहज ही था। बचपन में महात्मा गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री, विवेकानंद जैसे शख्सियत का चित्र बनाना देख किसी ने कहा– 'कला को अपना विषय बनाओ!' पर उचित मार्गदर्शन न मिला। जब ग्रेजुएशन के लिए दाखिला लिया, तभी पता चला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ललित कला की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। और फिर तैयारी कर दूसरी लिस्ट में मेरा नाम आने की सूचना तार से मिलते ही बोरियाँ– बिस्तर ले वाराणसी पहुंच गया। किन्तु पिताजी से बस इतना कहा– 'जितना हो सके पैसे भेजना।' कभी अपनी डिमांड नहीं रखी। सोचा, कुछ भी चाकरी कर पढाई पूरी करूंगा।

दूसरी लिस्ट के अनुसार बैचलर ऑफ फाइन आर्ट्स में दाखिला तो मिल गया। प्रथम श्रेणी से मास्टर ऑफ फाइन आर्ट्स की

पढाई पूरी की। मां शारदे का आशीर्वाद प्राप्त करते हुए 'कभी ना भूखा सोया, ना अभाव में रोया!'

बैचलर ऑफ फाइन आर्ट्स की शिक्षा के दरम्यान मूर्तिकला में विशेष अभिरुचि जागी, और श्रमसाध्य व खर्चीला होने के बावजूद अपनी मेहनत के बल पर मूर्तिकार के रूप मे जाना जाऊं, ऐसा सोच मूर्तिकला में विशेषज्ञता प्राप्त कर ली। बैचलर इन फाइन आर्ट्स की पढाई पूरी होते ही मुझे मानव संसाधन विकास मंत्रालय, कला संस्कृ ति विभाग, भारत सरकार की ओर दो वर्षों के लिए प्रतिमाह छात्रवृत्ति दिए जाने की घोषणा की गई। तब मुझे मास्टर ऑफ फाइन आर्ट्स की शिक्षा पूरी करने का अवसर मिला। उन्हीं दिनों गरमी की छुट्टियों में (चुनार) पाषाण शिल्प गढ़ रहे थे। जो उ. प्र. ललित कला अकादमी के वार्षिक कला प्रदर्शनी के लिए चयनित किया गया और माननीय राज्यपाल सूरजभान व राज्य संस्कृति मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक जी के हाथों ललित कला अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, साथ ही इन श्रेष्ठ पाषाण कलाकृति को अकादमी क्रय कर संग्रहित कर लिया। यह अवसर कला के क्षेत्र में पहचान बनाने व आर्थिक मजबूती के लिए मील का पत्थर साबित हुआ।

तब तक कला संस्कृति विभाग ने मूर्तिकार के रूप अपनी कला को पहचान दिलाने के अनेक अवसर प्रदान किए। अपने कुशल गुरूओं से कुशल मार्गदर्शन पाकर अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त कर कला के माध्यम से अपनी पहचान राष्ट्रीय पटल पर उजागर करने में सफल रहा। इस सफलता के पीछे अपनी कला/विधा (मूर्तिकला) के माध्यम से साहित्य सरोकार से जुड़े रहना व शीर्षस्थ साहित्यकारों, रचनाकारों, कलाकारों से साक्षात्कार करते हुए सम्मुख दो तीन बैठकें लेकर उन्हें कोमल मिट्टी में गढ़ना, विशेष महत्वपूर्ण रहा।

बैचलर ऑफ फाइन आर्ट्स के दरम्यान ही मेरी मुलाकात बनारस में ही वाचस्पति जी के नवनिर्मित निजी आवास पर हिन्दी के एक और पुरोधा त्रिलोचन शास्त्रीजी से हुई। वहां यूँ मैं अकेला नही

था– लम्बी कतार थी। हिन्दी साहित्य व विशेष कर त्रिलोचन शास्त्री जी में अभिरुचि वाले लोगों की । वैसे तो अवधेश प्रधान जी के साथ वहां गया था। शब्दावली के इनसाइक्लोपीडीया के रूप मे पाया था उन्हें। विषय चाहे कुछ भी, किसी कालखंड की हो, ऐसे व्याख्या करते और ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते, मानों वह शब्द का अभी–अभी ईजाद हुआ हो। वाचस्पति जी व उनकी श्रीमती जी की अगाध सेवा व निःछल श्रद्धा भाव उनके प्रति तो था ही। अन्य छात्रों व रिसर्च स्कालर के साथ त्रिलोचन शास्त्री जी परिभाषाओं में जिस प्रकार गुम हो जाते, उसी प्रकार में उनकी घनी दाढ़ी व गड्ढे में धंसी गहरी बड़ी–बड़ी झांकती आंखों की नैसर्गिक बनावट में बैठे–बैठे खो जाता। तभी वाचस्पति जी से अपने खो जाने का कारण बताया। वह बड़ी सहजता से वे तैयार हो गये। और बस गीली मिट्टी के स्पर्श से उनके कोमल व कठोर भावों को अपनी हथेलियों व गदेरियों से नवीन शब्दकोष की भांति मानों गढ़ने का प्रयास किया। उनके चेहरे के मस्सा की खूबसूरती ही कुछ गजब थी, जिसे सफलतापूर्वक धातुशिल्प में परिणत कर डाला। जिसकी काफी सराहना ललित कला केन्द्र लखनऊ में हुए प्रदर्शनी में गवर्नर राम नाइक ने की। और इस कलाकृ ति को लिटरेरी फेस्टिवल, लखनऊ में भी शामिल किया गया। जहां इस साहित्यिक धातुशिल्प के लिए सिने अभिनेता रजत कपूर के हाथों 'यूथ अचीवर्स' सम्मान भी प्राप्त हुआ।

उन्ही दिनों किसी साहित्य अनुरागी ने बताया था कि नागार्जुन व त्रिलोचन के ही समकक्ष जानकीवल्लभ शास्त्री जी के बारे में। हालांकि बिहार बोर्ड में उनकी रचना पढ़ने के कारण भी परिचित था ही। किन्तु मुजफ्फरपुर के उनके निवास का पता उन्हीं से मिला। कहा भी जाता है– जहाँ चाह वहाँ का रास्ता खुद व खुद मिल ही जाता है। फिर क्या था संपर्क स्थापित होते ही गीली मिट्टी व अन्य सामग्री सहित मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हो गया। मन में संशय था, किन्तु जिस विश्वास के साथ उनके आवास तक पहुंचा। प्रथम दर्शन हुए। मुजफ्फरपुर के चतुर्भुज स्थान में एक बड़े से दलान पर खूँटे से

बंधे अनेक गाय ,बैल, बृषभ आदि बिखरे पुआल। जब आगे बढ़ा तो देखा शास्त्री जी एक चौकी पर विराजमान हैं, और उसी चौकी के इर्द–गिर्द श्वान (कुत्ते) की टोली, जिसे शास्त्री जी पारलेजी के बिस्किट एक–एक कर खिला रहे थे। उनका ये पशुप्रेम अद्भुत था। उनसे मिलकर आने का कारण अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया। तभी उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी को पानी पिलाने को कहा। कुछ देर इस परिवेश को आत्मसात करने में लगा रहा, इसके बाद शास्त्री जी की रचनावली को पढ़ा। फिर उन्हें पढ़ने का प्रयास शुरू किया। शास्त्री के बाल झड़ चुके थे, अब तो चाँद की खुबसूरती दिखने लगी थी। आखिर एक रचनाकार का जीवन ठहरे हुए पानी की तरह थोडे न हो सकता है। दिन ढल चुका था। छोटी–छोटी बातों के साथ रात भी बीत ही गई। प्रातः पक्षियों की चहचहाट के साथ आँखें खुली और सूर्य नमस्कार कर दिन सफलतापूर्वक बीता। मेरे सामने बैठे शास्त्री जी जिन्हें गीली मिट्टी में गढ़ना शुरू किया और पूरी तरह शिल्पगत कर फिर उसका सांचा तैयार करने में लग गया। आने–जाने वाले को मूर्ति और शास्त्री जी में भेद करना मुश्किल हो रहा था, तब स्वतः प्रतीत हुआ परीक्षा में सफल हुआ। लौटते वक्त जानकीवल्ल्भ शास्त्री जी ने कुछ रूपये देने का भी प्रयास किया, मानों उन्हें अपनी कला प्रदर्शन कर पैसे की उम्मीद से आया कोई सिरफिरा कलाकार मालूम पड़ा होगा! मैंने सहजता से इंकार करते हुए उनको नमन कर सीधे वापिस आ गया।

एक शीर्षस्थ समालोचक के रूप में डॉ. नामवर सिंह जी का नाम काफी सुना था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनके अनुज डॉ. काशीनाथ सिंह जी के संपर्क में तो था ही और प्रभावित भी। अनेक बार साहित्यिक गोष्ठियों व साहित्यिक रंगमंच कार्यक्रम के दरम्यान नागरी नाटक मंडली हो या दिल्ली स्थित सभागार में अनेक महान रचनाकारों से जुड़ता गया। नामवर सिंह जी के तीन दिवसीय व्याख्यान कला भवन में आयोजन की सूचना उनकी शिष्या व वर्तमान हिंदी विभाग की व्याख्याता डॉ. रामकली सर्राफ से

मिली। दूसरे दिवस ही लक्ष्मण दास अतिथि गृह, बीएचयू (जहाँ वे ठहरे थे) जा पहुंचा। और उनसे मिलकर बताया की आपका पोट्रेट बनाना चाहता हूँ। बड़ी सहजता से उन्होंने कहा– 'कब, कहाँ! आपका स्टुडियो कहाँ है ?' उनकी आखों में अद्‌भुत चमक थी और व्यवहार में शुद्धता, जिज्ञासा, सहजतापूर्ण उमंग दिखा। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि तीन बजे से मेरा व्याख्यान है। उस समय 11 बजे थे।

मैंने बिना देर किये कहा– 'आपका थोड़ा सा वक्त लूंगा बस अभी लौटता हूँ।' और मिट्टी, पोट्रेट स्टैन्ड बांधे अपनी हीरो पुक से वापस आया, और कहा– 'अभी, इसी समय और यहीं आप अपना वक्त दें।'

उन्होंने गीली मिट्टी की तरह जैसे–जैसे मैंने कहा वैसे–वैसे सिटिंग दी, और तैयार हो गये एक और नामवर। वही ललाट, वही आँखें। वही गेस्ट हाउस की छत पर साथ में फोटो भी खिचवाये। ऐसी सहजता एक विराट व्यक्तित्व में मैंने देखी, शायद किसी ने न देखा हो। लगभग एक घंटे का वक्त लगा होगा। फिर समय से वे व्याख्यान को निकल गये, और मैं काशीनाथ जी की कार से उनके आवास पर सावधानीपूर्वक पोट्रेट शिल्प को लेकर गया। वहां जब काशीनाथ सिंह जी की धर्मपत्नी ने पोट्रेट देखते ही कहा– 'आँखों में आपने कौन–सा पत्थर लगाया है ? जीवंत चमकदार है।'

मैंने बताया– 'कोई नहीं, यह शिल्प गढ़ने की विधा के कारण ऐसा है।'

पर वह मानने को तैयार नहीं हुईं। वाकई डॉ. नामवर सिंह जी की आंखों में अद्भुत तेज था, और गहराई भी। कुर्ते, धोती, चप्पल मे उनका व्यक्तित्व तो निखरता ही था। उनका ललाट, आंखों के साथ–साथ तेज आलोचना हिंदी साहित्य के शीर्षस्थ समालोचक के रूप में ख्यातिलब्ध रहे।

तीसरे दिवस के व्याख्यान में जब उपस्थित हुआ तो डॉ. रामकली सर्राफ ने मंच संचालन करते हुए कहा– '...शायद ही कभी हिंदी के व्याख्यान में इतनी भीड़ देखने को मिलती हैं। पहली बार कला भवन के सभागार के भीतर और बाहर खचाखच साहित्य प्रेमियों की भीड़ देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे अमिताभ बच्चन के आने पर भीड़ होती है।' वैसा ही आकर्षण, सम्मोहन डॉ. नामवर सिंह जी के व्याख्यान वाणी में था। सचमुच एक विराट व्यक्तित्व की सहजता को एक मूर्तिकार के रूप मे जाना करीब से, जो किसी और ने न देखा होंगा ।

फिर तो न कितने मनीषियों, संगीतकारों, चिकित्सक, कलाकारो,कला आलोचकों को मूर्तिमान किया। जिनमें पद्मश्री पं. विद्यानिवास मिश्र, कर्णाटक शैली के पं. माघवगुडी, पद्मश्री पं. जसराज, पद्मश्री पं. शिव कुमार शर्मा, अनुप जलोटा, पद्मश्री उमा कान्त गुन्देचा, पद्मश्री राजेश्वराचार्य, कला समीक्षक केशव मल्लीक, के. एक कक्कड, डा. आनंद कृष्ण दास, डा. विजय नाथ मिश्रा, चित्रकार एस. प्रणाम सिंह, जयकृष्ण अग्रवाल आदि अनेक दिग्गजों के जीवंत पोट्रेट सामने बिठाकर दो–तीन बैठकों में तैयार करने का अनोखा अनुभव साथ लिए प्रसन्नता होतीं है। प्रबल इच्छा होती हैं कि संस्कृति विभाग के सौजन्य से एक संस्मरण के रूप में संग्रहालय बने, जो नयी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी हो।

❖

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लेख

नारी शक्ति : अस्मिता और अस्तित्व

पूजा सचिन धारगलकर
इ.डब्ल्यू.एस 247, हाउसिंग बोर्ड
रुंडमोल दवर्लिम सालसेत (गोवा)
pujadhargalkar7@gmail.com

स्त्री के बिना सृष्टि का संचालन नहीं हो सकता स्त्री गौरव गरिमा है समाज की। जिसका ऋण कभी नहीं चुकाया जा सकता। स्त्री प्राणदायिनी है। एक सुंदर प्रतिमा है। उसको संभाल पाने में हम काही न कही पीछे रह गए। हमने उन्हें सिर्फ भोग्य की रूप में देखा। पाया और छोड़ दिया वस्तु की भाँति। स्त्री सृष्टि का रहस्य है और जो इस रहस्य को समझ पाया वही सबसे बड़ा धनवान है। श्रीकृष्ण ने महाभारत में कहा था कि जब–जब स्त्री के सम्मान को ठेस पहुचेगा तब–तब महाभारत होगा। स्त्री के उदार और कोमल मन को हम कभी समझ नहीं पाए। स्त्री के मन को तोड़ना तन्तु से भी आसान है। लेकिन उसके विश्वास को फिर से पाना कठिन। पुरुषों ने अपनी मर्यादा को लांघ दिया। पुरुष प्रधान होने का इतना अहं हुआ कि वह अपना विवेक और मर्यादाओं को भूल गया। स्त्री के दुख का कारण बनने वाले हर पुरुष कायर और कापुरूष होते है। जो एक स्त्री को समझ नहीं पाया वह किसी भी वस्तुस्थिति को समझ नहीं सकता उससे किसी भी चीज की अपेक्षा नहीं की जा सकती। सुनने में भले कटु लगते है पर सत्य वचन है जिसे कभी झुठलाया नहीं जा सकता।

किसी भी सभ्य समाज अथवा संस्कृति की अवस्था का सही आकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति का आकलन कर के ज्ञात किया जा सकता है। विशेष रूप में पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक सी नहीं रही। वैदिक युग में स्त्रियों को उच्च शिक्षा पाने का अधिकार था, वे याज्ञिक अनुष्ठानों में पुरुषों की भांति सम्मिलित होती थी। किन्तु स्मृति काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक युग की भांति नहीं थी। पुत्री के रूप में तथा पत्नी के रूप में स्त्री समाज का अभिन्न भाग रही लेकिन विधवा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण कालानुसार परिवर्तित होता गया।

जब महिलाओं ने अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर सोचना–विचारना आरंभ किया, वही से स्त्री आंदोलन, स्त्री विमर्श और स्त्री अस्मिता जैसे संदर्भों पर बहस शुरू हुई। नारिवाद की सर्वमान्य कोई परिभाषा देना मुश्किल काम है, यह सवाल है राजनीतिक, सामाजिक और संस्कृतिक संस्थाओं के सोचने के तरीके और उन विचारों की अभिव्यक्ति का है। स्त्री–विमर्श रूढ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदण्डों, मूल्यों व अंतर्विरोध को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। विश्व चिंतन में यह एक नयी बहस को जन्म देता है, पितृक प्रतिमानों व सोचने की दृष्टि पर सवालियाँ निशान लगाता है, अखित क्यों स्त्रियाँ अपने मुद्दों, अवस्थाओं, समस्याओं के बारे में नहीं सोच सकती? क्यों उनकी चेतना इतने लंबे अरसे से अनुकूलित, अनुशासित व नियंत्रित की जाती रही है, क्यों वे सांचोंमे ढली निर्जीव मूर्तियाँ है ?

जब भी स्त्री विमर्श की बात होती है तो उसके केंद्र में आज भी मध्यवर्गीय स्त्री का जिक्र होता है। इसकी एक बड़ी वजह साहित्यकारों और विमर्शकारों का खुद मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ होना है। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर विरोधो से भरी हुयी है। परंपरा से नारी को शक्ति का रूप माना है, पर आम बोलचाल में उसे अबला कहा जाता है। मध्यकालीन भक्त कवियों के यहा भी स्त्री को लेकर अंतर्विरोध उक्तियाँ विद्यमान हैं। आज भी हमारे समाज

और साहित्य में स्त्री के प्रति कमोवेश यही अंतर्विरोधी रवैया मौजूद है।

भारत के बहुस्तरिय सामाजिक ढाँचे में स्त्री का संघर्ष सिर्फ देह की स्वतंत्रता या लिंग की लड़ाई तक सीमित नहीं है यहाँ स्त्री को कई मोर्चे पर एक साथ लड़ना है और यौनिक स्वतंत्रता इस लड़ाई का अनिवार्य हिस्सा है। जैविक संरचना के आधार पर लैंगिक भेद को सही मानने और गलत मानने का भी मूल वर्गीय आधार से ही नाभिनाल संबंध है। जेंडर सामाजिक–सांस्कृतिक रूप में स्त्री–पुरुष को दी गयी परिभाषा है, जिसके माध्यम से समाज उन्हें स्त्री और पुरुष दोनों की सामाजिक भूमिका में विभाजित करता है। यह समाज की सच्चाई को मापने का एक विश्लेषात्मक औजार है। स्त्री मुक्ति का अर्थ पुरुष हो जाना नहीं हैं। स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएँ हैं, उनके साथ ही समाज द्वारा बनाए गए स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति के साथ, मनुष्यत्व की दशा में कदम बढ़ाना, सही अर्थों में स्वतंत्रता है। स्त्री को अपनी धारणाओं को बदलते हुए, जो भी घटित हुआ, उसे नियति मानने की मानसिकता से उबरने की आवश्यकता है , लेकिन साथ ही पुरुष वर्ष को ही दोषी मानकर कठघरे में खड़े करने वाली मनोवृत्ति बदलनी होगी।

एक ईश्वर भी स्त्री का ऋणी होता है क्योंकि स्त्री के गर्भ के बिना जन्म हो ही नहीं सकता। सौंदर्य शक्ति में शंकरचार्य कहते है शक्ति के बिना शिव अधूरे ही अगर शिव से ई की मात्र निकाल दी जाए तो शिव शव बन जाते है। सत युग, त्रेता युग, द्वापर युग और कल युग से स्त्रीयाँ प्रताड़ित होते आ रही है। जब भी सामाजिक, धार्मिक, सांप्रदायिक की बात हो उसकी भरपाई सिर्फ स्त्री को करनी पड़ती है। हर तरफ से चाहे वह कोई भी हो सिर्फ उसका उपयोग किया जाता। रात दिन खटती है बाहर कार्य करने वालों को एक दिन की छुट्टी मिलती है पर एक गृहिणी सारा घर संभालती है साथ ही परिवार बच्चे, पति का ख्याल रखती है। लेकिन उसके लिए कोई छुट्टी नहीं होती ना उसे कोई पूछता है की तुझे क्या चाहिए। सत युग में अहिल्या, त्रेता में सीता, द्वापर में द्रोपड़ी और कलियुग में उदाहरणों की भरमार है। आज महीने के बच्ची से वृद्ध महिला को नहीं छोड़ा

जाता। आज भी बच्चियाँ कूड़े के डिब्बे में पड़ी मिलती है आज हम भले ही कहे हम आधुनिक, शिक्षित कहे लेकिन हमारा विचार नहीं बदला। लोग स्त्री को गलत समझते है। हम हमेशा लड़की को बताते है कैसे रहना है क्या पहनना है, कैसे बोलना, हसना है। लेकिन हम लड़कों को यह नहीं कहते कि किसी भी लड़की की ओर बुरी नजर से मत देखना अगर यह हम शिक्षा बच्चों को देते तो कितने बच्चों की जान बचती। स्त्री पुरुष के बीच भेद करने का हमे कोई अधिकार नहीं। आज पूरा विश्व कोरोना महामारी से जूझ रहा है फिर भी पति अपने घर में स्त्री को शारीरिक तकलीफ दे रहे है। स्त्री नए रूपों की तलाश में बदलते रिश्ते इस कहानी में मानवीय रिश्तों को दर्शाया गया है। किस तरह से आज रिश्ते अपना नया रूप धारण कर रहे है। लोगों के जीवन में बदलाव आ रहा है लेकिन लोगों की सोच ज्यों की त्यों ही है। हमे अपनी सोच में बदलाव लाना जरूरी है। हम प्रेकटिकल होकर भी प्रेकटिकल में नहीं सोचते है। पुरानी तौर के सोच को ही अपनाते है। आज लोग खुद को आधुनिक समझने वाले पर उनकी सोच आधुनिक नहीं रही।

इतिहास और जिंदगी का कलात्मक रूपांतरण इस उपन्यास का अध्ययन करते समय गांधीजी के वास्तविकता जीवन के बारे में जानकारी मिली। सामाजिक संघर्ष की गाथा इस उपन्यास का अध्ययन करते समय बंजारा समाज की स्थिति के बारे में पता चला किस तरह से लोग जीवन में संघर्ष करते है। और यह भी पता चला की बंजारा समाज की स्थिति दलित और आदिवासी समाज से अलग नहीं है। भविष्य में इससे यह फायदा हो सकता है कि, अगले साल प्रक्ल्प करते समय कुछ कठिनाई आयी तो आसानी से सामना कर सकते है। और मै अब किसी भी कहानी या नाटक की समीक्षा कर सकती हूँ। स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन से आज हम इतना आगे निकल आए हैं कि अब तक हमको मानवीय समस्याओं से निजात पा लेनी चाहिए थी संस्कृति के उत्तुंज शिखर पर गुरु–गरिमा से अभिसिक्त होकर बैठा हमारा देश, भीतर से बोझिल, चरमराया, अभिशप्त, पलायन–प्रेमी और तमाम स्तरहीन संज्ञाओं में जी रहा है, इससे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हमारे जीवन मूल्यों में रोज–ब–रोज शनैः शनैः गिरावट आ रही

है। आज कुव्यवस्था की गरम रेत पर नंगे पांव खड़ी नारी उस गुहारे को अपनी सर्जनात्मक शक्ति बनाकर प्रस्तुत हुआ है, एक नारी के सामने पुरुष इतना भेड़िया क्यों बन जाता है कि उसके यौवन को कच्चा चबा जाने में उतावला नजर आता है।

अत्याचार के 'अ' के बाद बलात्कार का 'ब' समाज के 'स' के साथ आदिम युग से चिपके वर्ग हैं। उपन्यास के प्रारंभ में अबोध सरला का बलात्कार बताया गया है, जिसकी कान–फोड़ ध्वनि उपन्यास के अंत तक दिल दहला देने वाले हादसों की अनुगूंज बनी मिलती है। मीनाक्षी स्वामी ने समानवय के तीन युवा चरित्र ढाले है राज, मणि और उमेश। राज, पारंपरिक जीवन शैली को महत्व देता है, नायिका कंचन का भाई है, कंचन पर अंकुश बनाए रखना ही उसका स्वभाव है। दूसरा पात्र है मणि जो महत्वकांक्षी, और कंचन का दोस्त फिर उसका प्रेमी फिर उसका होने वाला वर कंचन से मुंह मोडकर पलायन कर जाने वाला गैरजिम्मेदार साबित होने वाला व्यक्ति तिसरा पात्र उमेश जो आधुनिक है उच्छृंखल तबीयत वाला जैसे हवस का लेखा जोखा जो लड़कियों का बलात्कार करता है। भूभल के प्रणयन में उपन्यास हर वर्णित छोटे–बड़े पात्र के साथ बराबर से खड़ी मिलती है। कंचन के बाबूजी का स्वप्नदृष्टा रूप गढ़ने में कंचन की अम्मा का पारिवारिक दायित्व कंचन की भाभी शोभा का मसालेदार चित्रण कंचन के फूफा का कंचन के प्रति रागात्मक रिश्ता जोड़ने में इसके अलावा सुश्री निशा रायकवार, श्रीमती शोभना केलकर इस उपन्यास की बुनियाद को पुख्ता बनाता है।

उपन्यास की वर्णित भाषा का प्रयोग एक अद्भुद तरलता भाषा की रवानी ज्ञापित होती है इसमें संस्कृत, तत्सम, शब्दों का प्रयोग ज्यादातर दिखायी देते है कभी–कभी पाठकों में विचार विमर्श को जन्म देती है जैसे 'ममता' का कोमार्य उसके प्रेम संबंध का परिणाम है न कि चरित्रहीनता का। उपन्यास को पढ़ने के बाद यह मालूम पड़ता है कि पहले स्थिति जिस स्तर पर थी, आज भी उसी स्तर पर दिखायी देती है। उस वक्त स्त्री जिस यातना से गुजरती है सिर्फ वह महसूस कर सकती है। उस वक्त अपने भी खिलाफ हो जाते है। समाज जो भी करे समाज पर कोई उंगली नहीं उठायेगा पर बुरी

नजर से समाज स्त्री को देखेगा घाव पर मरहम लगाने के बजाए सिर्फ चोट दी जाती है। एक बच्ची से लेकर स्त्री के साथ यही हो रहा है। एक पुरुष या तो अपनी ख्वाईश, अय्याशी या फिर दोस्तों के बीच शर्त के कारण पर इस के कारण जो भी जो एक पीड़ा के साथ एक स्त्री ही गुजरती है। एक स्त्री ही पिसती है। उसी को सारी सघर्षों का सामना करना पड़ता है। एक अधखिले फूल को खिलने से पहले ही उन्हें तोड़ मरोड़ दिया जाता हैं। सामयिक दृष्टि के बूते पर परिपक्व और औपन्यासिक कृति को सामने लाने के लिए मीनाक्षी स्वामी को बधाई। नए रूपों की तलाश में बदलते रिश्ते पैमिला मानसी का यह बारह संग्रहों का उपन्यास इसकी समीक्षा राजेश कुमार सिंह ने की थी अब मैं इस समीक्षा की समीक्षा करना चाहती हूँ।

'मैं बदल जाती हूं' पैमिला मानसी की बारह कहानियों का एक नया इस संग्रह की कहानियां बदलते समय में जीवन का अर्थ खोजने का प्रयत्न करती नजर आती हैं। समय बदल चुका है, लोगों की जीवन शैली भी बदल चुकी है, निसंदेह जीवन को अर्थ देने वाले मानवीय रिश्ते भी समय के साथ अपना नया रूप तलाश रहे होंगे। कहानियों के पात्र बदलती हुई शैली को बदलते हुए रिश्तों को नापते–तोलते रहते हैं और इसी नाप–तौल की प्रक्रिया से गुजरते हुए अपना रूप भी बदल जाते हैं। 'तुम और मैं' इस कहानी में 'ईशा' और उससे सात वर्ष छोटी बहन शैफाली के बदलते रिश्तों की कहानी है। एम.बी.ए. कर 'कार्पोरेट वर्ल्ड' में नौकरी करने वाली ईशा और लिटरेचर फिलॉसफी में दिलचस्पी रखने वाली शैफाली दोनों के लिए जीवन के अर्थ अलग–अलग है। ईशा व्यावहारिक दृष्टि से देखने वाली और शैफाली भावनाओं को समझने वाली जाहीर है दोनों के जीवन शैली में अंतर होगा इस कहानी में 'फिमेल बोडिंग' का जिक्र किया गया है 'फिमेल बोडींग' एक औरत का दूसरी औरत के साथ जुड़े रहना। शैफाली को धक्का इस कारण नहीं लगता कि सतीश किसके साथ क्या करता है, वह टूटती है तो सिर्फ इसलिए कि जिस 'फिमेल बोडिंग' को वह सहारा समझ रही होती है, उसी ने उसके घर परिवार में सेंध की थी। ईशा कहती है जीवन में जो हो, प्रेम या कुछ भी सब व्यापार है, केवल लेन–देन एक हाथ दे दूसरे हाथ ले।

संग्रह की अन्य कहानियों में धार्मिक आध्यात्मिक बाबा को समर्पित तीन कहानियां हैं– मैं कल रोऊंगा, वापसी, और कहीं कहीं दीप। तीनों ही कहानी अलौकिक शक्ति, ध्यान, साधना, अधात्म, वेहांत चमत्कारिक घटटोप बांधती है किंतु जीवन शैली की विसंगतियों से उत्पन्न अवसाद और तनाव से मुक्ति का प्रयास नजर आती है।

'कहीं–कहीं दीप' की नमिता बड़े कंपनी की सीईओ, अपने जीवन की रिक्तता को दूर करने के लिए गुरुबाबा के शिविर की ओर कूच करती है। 'दीवार पर लटका चेहरा''विधाता' और 'ईश्वरजी' कहानी में यह देखने मिलता है। विवाह संस्था की नाकामी और क्षणिक रूप में सही विवाहेतर संबंध में ही सच्चे प्रेम की अनुभूति बताती है। 'मैं आवाज दे रही हूँ' कहानी में विवाहेत्तर संबंध से गर्भ धारण करने वाली लता का अपने पति के संबंध में कथन है क्या मेरी एक गलती वह माफ नहीं कर पाएंगे। आग कहानी में नीरजा ने कहीं किसी स्तर पर अपने पति से हिसाब बराबर कर ही लिया था। तुम्हारे मेरे बीच क्या संबंध रहा, वर्षभर, यह आज समझ पा रही हूँ। जानते हो क्या था जो आज तक मेरे तुम्हारे बीच रहा, केवल एक सिफर, एक शून्य, जो इस समय महाकाल की तरह मुंह फाड़े मुझे निगल लेना चाहता है। इस कहानी संग्रह में संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे– धार्मिक, आध्यात्मिक, विरुद्ध और कार्पोरेट वर्ल्ड, लिटरेचर, फिलसफी, प्लेटफार्म, फिमेल बोडिंग आदि। इन सब कहानियों में लेखक ने लोगों के मानसिकता पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। आज कल लोग खुद को आधुनिक समझने वाले पर उनकी सोच पुराने खयालात के ही रह गयी है। शिक्षा दीक्षा, परिवेश, उच्च वर्ग में रहने से कोई फरक नहीं पड़ता अगर लोगों की सोच उच्च विचार की नहीं है तो। तुम और में कहानी जीवन का अर्थ कैसे बादल जाता है और कैसे मानवीय रिश्ते अपना नया रूप बदलते है यह देखने मिलता है। दो बहने एम बीए कर कार्पोरेट वर्ल्ड में नौकरी करती है और एक लिटरेचर, फिलासफी में दिलचस्पी रखने वाली दोनों के लिए जीने का ढंग और जीवन शैली अलग है। जीवन में हर किसी का जीने का ढंग सोच अलग होती है कुछ व्यावहारिक दृष्टि से देखते है तो कुछ लोग भावनाओं से सोचते है। कुछ उच्च शिक्षा, क्लब जाते

है और खुद को आधुनिक समझने वाले पर उनकी सोच आज तक पुरातनपंथी की ही रह गयी है। पढ़े–लिखे होने के साथ बाबाओं पर विश्वास रखना। आज पुरुष का विवाह होने के बावजूद किसी और के साथ संबंध बनाए रखता है। किसी दापत्य जीवन में खटास आ जाने के कारण जीवन के बीच एक सेतु बन गयी है। मानवीय रिश्ते के नए–नए कोणों को उभारने और उसे सैद्धांतिक जामा देने का भी प्रयास करते है।

'सामाजिक संघर्ष की गाथा' डॉ. मृदुला शुक्ल का उपन्यास है। राजेश राव ने इस उपन्यास की समीक्षा की है, और मैं इस समीक्षा की समीक्षा करना चाहती हूँ। फीनिक्स उपन्यास के बाद मृदुला शुक्ला का दूसरा उपन्यास हिरनी बिरनी है। इस भूमिका में मृदुला लिखती हैं यह सामाजिक–संघर्ष की सच्ची गाथा है। हिरनी–बिरनी के बंजारा समाज के जीवन को केंद्र में रखकर लिया गया है। लेखिका हिरनी और बिरनी के जीवन का चित्रण करती हुई बंजारा समाज की छोटी–छोटी जानकारी को भी पाठकों के साथ साझा करती है। उपन्यास में विलोकी सरदार, सुगिया, समरू, जोगिया, करूआ, लाखो, परमा, हिरनी बिरनी, पोषण सिंह और शतरुपा आदि के पात्र है, जो उपन्यास की सरंचना का विशेष स्थान रखते है। उपन्यास आगे बढ़ने के साथ ही पारंपरिक उपन्यास का दर्जा प्रपट कर लेता है। मृदुला शुक्ल इस उपन्यास को शुद्ध प्रेमकथा मानती है। नायक पोषण सिंह प्रेम की परिक्षा देता है। वह मोहन भैया को कुश्ती में हराकर हिरनी बिरनी को प्रपट कर लेता है। लेखक का मानना है हिरनी – बिरनी शुद्ध प्रेम कथा नहीं है।

हिरनी बिरनी पोषण सिंह के अलावा सुगिया और समरू भी उपन्यास में अपना महत्व रखते हैं। समरू जहां एक कमजोर चरित्र है, वही सुगिया एक अच्छी मां होते हुए भी,महत्वकांक्षी स्त्री है। अपनी महत्वकांक्षी के कारण ही वह समरू का साथ छोड़ जाती है। एक चोरी के जुर्म में पिता को छोड़ने के एवज में थानेदार ने हिरनी बिरनी से जिस्म की मांग की। स्त्री अगर बंजारा समाज से है तो उसका सघर्ष कई गुना इस तथाकथित सभ्य समाज में और बढ़ जाता है। हिरनी बिरनी संघर्षशील स्त्री चरित्र के रूप में उपन्यास में उपस्थित

हैं । हिरनी बिरनी को कहीं अभिशापों से गुजरना पड़ा। मां साथ छोड़ जाती है तथा पिता के देहांत के बाद, जीवन संघर्ष की लड़ाई में वे अकेली रह जाती है। हिरनी बिरनी हार नहीं मानती है। यहां पर एक एक ईश्वर भी स्त्री का ऋणी होता है क्योंकि स्त्री के गर्भ के बिना जन्म हो ही नहीं सकता। सौंदर्य शक्ति में शंकरचार्य कहते है शक्ति के बिना शिव अधूरे ही अगर शिव से ई की मात्र निकाल दी जाए तो शिव 'शव' बन जाते है। स्त्री का साहस भी दिखाया है। अपनी तेजस्विता के बल पर पुरुषों के वर्चस्व वाले कबीले में टंडा प्रमुख हो जाती है। हिरनी बिरनी अपने हक के लिए संघर्ष करती हुई अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति करती है। उन्होंने कबीले के लोगों की परवाह न करते अपने लिए शक्तिशाली पुरुष की मांग की। पोषण सिंह एक ऐसा चरित्र है, जिसने अपने पूरे परिवार को छोड़कर दूसरा घर बसाया। वह प्रेम अपनी पत्नी शतरुपा से भी करता था। हिरनी बिरनी में शिल्प और शैली का अनूठा संगम हुआ है। 135 पृष्ठ में रोचक शैली का विकास किया है। पूरी कथा वर्तमान में चलती है। कथा की धारा प्रभावमय हैं। उपन्यास शुरू करने के बाद आगे क्या हुआ की रोचकता बनाए रखती है। घर–दुआर, हवा–बतास, ओंझाई जैसे शब्दों के द्वारा लोक को रचती है, गुलगुलैन, ठंडा, उगादी जैसे बंजारा समाज में प्रचलित शब्दों से परिचित कराती हैं, और इसमे अंग प्रदेश भाषा का भी प्रयोग किया है।

इस उपन्यास में बंजारा लोगों की यातना को दिखाया है, खासकर स्त्री कैसे संघर्ष यातनाओं को बताया गया है। यहां पर गरीब परिस्थिति को दर्शाया गया है। जब भाग्य में विकट परिस्थिति आती है, तब दूसरे लोग उस परिस्थिति का फायदा उठाते है। उन्हें लगता है– ऐसे या वैसे उनका काम निकाल जाएगा। पर परिस्थिति जब साथ छोड़ देती है तब खुद को वहाँ पर आवाज उठानी पड़ती है पर कहीं अपने भी उस वक्त खिलाफ हो जाते है। पोषण सिंह जो पात्र है उस पात्र को इस तरह से दिखाया गया है कि किसी के साथ जीवन में जो भी हुआ उसे भूला कर उसे मान्यता देकर जीवन में आगे बढ़ना। कुछ पुरुष अपने महत्ता वर्चस्व को दिखाना चाहते है पर उनका वह वर्चस्व न होते एक पुरुष की बहुत ही कमतरता होती है

जो एक पुरुष स्त्री के लिए कुछ भी न कर पाए। एक पुरुष वही श्रेष्ठ पुरुष होता है जो स्त्री के लिए स्त्री की सवेदना के लिए सब कुछ त्याग कर अपना ले।

घर और परिवार से स्त्री का नाभिनाल का संबन्ध है। घर भले ही अब आधुनिक हो गया हो, मगर उसकी सत्ता स्त्री को हमेशा से ही शासित करती रही है। इसी सत्ता की पहचान वह आज कर रही है, और तीखे प्रश्न कर रही है। आधुनिक काल में यदि यह कहें कि स्त्री परिवार कुटुम्ब आदि की रागात्मकता, स्त्री संरक्षण की मिथ्याभाषी सह्रदयता और पूँजीवादी समाज की छद्म स्त्री स्वाधीनता के तमाम आवरणों को भेदकर पुरुष वर्चस्ववाद की सर्वव्यापी सत्ता को कठघरे में खडे करने को तत्पर है तो अतिशयोक्ति न होगी। प्रस्तुत उपन्यास में प्रिया अपने परिवार की छाया में रहने की इच्छा रखनेवाली एक साधारण सी लड़कियों में से एक नहीं है। परिवार में माँ एक ऐसी पात्र का बोध कराती है कि अपनी बेटी के प्रति मातृ–वात्सल्य या उसके प्रति खातिरदारी अदा नहीं करती है। प्रस्तुत उपन्यास में आकर पता चलता है कि परिवार का मतलब बदल जाता है। क्योंकि सभी सदस्यों के एकजुट होकर रहने से परिवार का महत्त्व बढ जाता है। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। प्रिया, उसकी माँ परिवार में ही अपनी एक अलग दुनिया बसाने में परिश्रम करते है। प्रिया की माँ अपनी जिन्दगी में किसी दूसरे को ज्यादा मानती है। तब दूसरी ओर प्रिया अपनी माँ की लापरवाही पर अपने लिए अलग एक आसमान ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ती है। जब अपने घर में ही परायेपन महसूस होने लगता है, तभी वे दूसरों का आश्रय लेते है। यहाँ प्रिया अपने घर के प्रति कोई भावना रखना नहीं चाहता हैं। क्योंकि उस घर में उसे अपना बनाने के लिए कोई नहीं है। आधुनिक समाज की विडंबना यह है कि हर एक सदस्यों में एक अलगाव या अजनबीपन फैल रहे है। यह खतरे की ओर इशारा दे रहे है। लोगों को समझना चाहिए कि कैसे इस तरह की मानसिकता को मिटाकर, पारंपरिक मूल्यों को बचाकर, अपनी जिन्दगी को स्वस्थ बनाये। परिवार में एक एक क्षण सदस्यों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। यह दूरी अपने विचार पर, अपनी जिन्दगी पर आँच पैदा करती है। यहाँ प्रिया और उसके परिवार

के बीच में लंबी दूरी पैदा होती है। यहाँ तक की वह जिन्दगी में एक अहम निर्णय लेने में असफल हो जाती है, उसके परिवार भी उसमें हल ढूँढने के लिए नाकामयाब होते है।

परिवार के रूप में स्त्री और पुरुष ने अपनी रागात्मक वृत्ति को आधार बनाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक ऐसी सामाजिक संस्था का विकास किया, जिसका विस्तार ही सामाजिक संरचना और जीवन के अनेक संदर्भों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था है।

संदर्भ सूची :

1. औरत : अस्मिता और अस्तित्व, संपादक–ज्ञानेंद्र रावत, कांति बुक सेन्टर ए–507/12, करतारनगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गावंडी एक्सटेंशन, दिल्ली 110053ए प्रथम संस्करण 2006
2. शशिप्रभा के उपन्यासों में नारी संवेदना, डॉ रेणुका दिगंबरराव मोरे, अलका प्रकाशन, 34/6 एच.ए.एल. कालोनी, रामदेवी, कानपुर 208007, प्रथम, 2007,
3. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण, डॉ. मोहम्मद अजह ढेरीवाला, चिन्तन प्रकाशन, 22 ए, मछरिया रोड, नौबस्ता, कानपुर 208021,प्र थम संस्करण– 2001

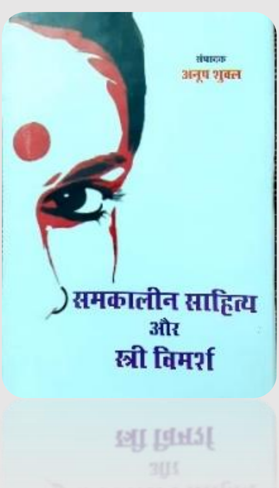

समकालीन साहित्य और स्त्री विमर्श

अनूप शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-5-8

संस्करण : 2015, मूल्य : 400/-

एक बेहतर दुनिया के लिए

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
misragirishwar@gmail.com

लगभग डेढ़ शताब्दी 1750 से 1900 के बीच पूंजीवाद और प्रौद्योगिकी ने एक नई तरह की सभ्यता का आगाज किया था। इन विचारों का जिस तरह वैश्विक स्तर पर फैलाव हुआ और वह सभी क्षेत्रों, वर्गों और संस्कृतियों पहुंचा उसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया. पूंजीवाद के इस विस्तार ने ज्ञान का अर्थ ही बदल दिया। ज्ञान जो पहले मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ा था अब वह कर्म में प्रयुक्त हो गया। यह एक साधन और उपयोगी वस्तु हो गया. कभी जो ज्ञान निजी था वह सार्वजनिक हो गया। ज्ञान को उपकरणों, प्रक्रियाओं और उत्पादों में प्रयुक्त किया जाने लगा। इसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। साथ ही इसने अलगाव को भी खूब बढ़ाया। फिर हमने यह भी देखा कि वर्ग संघर्ष के साथ साम्यवाद आया। ज्ञान के उपयोग के साथ उत्पादकता की क्रान्ति हुई। उत्पादकता क्रान्ति ने वर्ग संघर्ष और और साम्यवाद को हरा दिया। अंतिम दौर दूसरे विश्व युद्ध के बाद शुरू हुआ। अब ज्ञान का उपयोग ज्ञान के लिए शुरू हुआ। इससे प्रबंधन क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। पूंजी और श्रम को किनारे कर ज्ञान

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उत्पादन का एक कारक हो गया। हमारा समाज ज्ञानकेन्द्रित तो नहीं हुआ है पर अर्थव्यवस्था जरूर ज्ञानकेन्द्रित हो चुकी है।

अब आर्थिक समृद्धि परवान चढने लगी और सुख की इच्छा भी तीव्र होती गई। पृथ्वी, जल और अंतरिक्ष समेत सारी सृष्टि के अधिकाधिक दोहन कर विकास के नए प्रतिमान स्थापित होते गए। विश्व में आर्थिक प्रगति की दृष्टि से ध्रुवीकरण होता गया और पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया के बीच देशों को बांटा जाने लगा। विकास का पैमाना विकसित देशों से लिया गया और सभी देशों को उससे नापने की व्यवस्था की गई। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण को महामंत्र मानकर सारी क्षेत्रीय और सांस्कृतिक विविधताओं को किनारे रख पिछड़े देशों को कर्जदार बनाकर एक विलक्षण आर्थिक प्रगति का एकहरा माडल आरोपित किया गया। इसके परिणाम मिश्रित हैं। अनचाही प्रतिस्पर्धा, हिंसा और प्राकृतिक संसाधनों का का अनियंत्रित दोहन प्रकृति के स्वाभाविक चक्र को ही खंडित कर रहा है। विकास की दौड़ विनाश जैसी लगने लगी है। सभी सकते में हैं और धरती और पूरा पर्यावरण जोखिम की गिरफ्त में है। इस पूरी कहानी के अंजाम को लेकर सभी चिंतित हैं। विकल्प की तलाश में हमारा ध्यान महात्मा है जो गांधी की दृष्टि पर जाता है। उनके सादगी और अहिंसा के विचार मानव कर्तृत्व की एक सहज व्यवस्था में स्थापित हैं। वह संतुष्टि की अर्थ व्यवस्था की ओर ले चलते हैं। न कि वृद्धि की अर्थ व्यवस्था की ओर। यह उस उत्पादन–उपभोग की प्रधानता वाली शैली के विपरीत है, जिसमें असमानता और गरीबी दोनों ही मजबूती के साथ आज भी टिके हुए हैं।

सादगी और अहिंसा के विचार परस्पर जुड़े हुए हैं। पश्चिमी तार्किक निगमन से भिन्न गांधी जी प्रज्ञा और सत्य के साक्षात अनुभव वाली आध्यात्मिक परम्परा से जुड़े हुए थे। अहिंसा का विचार पीड़ा न पहुँचाने के भाव से जुड़ा हुआ है। इसमें नकारात्मक भाव के बदले में न केवल हिंसा का त्याग निहित है बल्कि एक सकारात्मक स्थिति है जिसमें सभी प्राणियों के साथ तादात्म्य स्थापित करना प्रमुख है। ऐसी स्थिति में आदमी प्यार के भाव से कार्य करता है। अपने और दूसरे दोनों के हित–साधन के भाव से कार्य करता है। साथ ही हर

संभव पीड़ा के प्रति सतर्कता भी रहती है। जैन मुनि स्वच्छता का विशेष ध्यान रखते हैं और मुंह पर मास्क लगाते हैं। हर कार्य प्रीतिबर्धक हो जाता है। ऐसे ही सादगी विश्व के प्रति प्यार का रूप ले लेती है। जब निजी सुख को त्यागने की बात आती है। प्लास्टिक के झोले हम उपयोग में लाते हैं, यदि सारी दुनिया के साथ तादात्म्य हो जाय तो धरती की चिंता होगी और उपभोक्ता का भाव बदल जायगा. गांधी जी अपने को अद्वैतवादी कहते हैं और सभी के बीच एक अनिवार्य एका देखते हैं। उनका विश्वास था की एक आदमी की आध्यात्मिकता से सकल विश्व लाभ पाता है।

आधुनिक उत्पादन–उपभोग की प्रणाली सबके साथ तादात्म्य की बात नहीं करती है। इसका परिणाम गरीबी और असमानता ही नहीं पर्यावरण का दोहन भी है। प्रजातियाँ तक लुप्त हो रही हैं। संपत्ति का अधिकार आज की वैश्विक अर्थ व्यवस्था में अति उत्पादन और अति उप भोग को जन्म दे रहे हैं। इसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन और वैश्विक असमानता है। वैश्विक संस्थाएं बड़े गरीब देशों में गरीबी और पीड़ा को जन्म देती हैं। स्वास्थ्य और स्वच्छता की चुनौतियां, धर्म, भाषा कला विज्ञान आदि का क्षेत्र जो संस्कृति में आता है। वह भी कारण है. पर इन आलोचनाओंमें सब के साथ तादात्मीकरण का भाव नहीं लाते हैं। भौतिक दृष्टि से परे एक सर्वातिक्रामी नजरिये की जरूरत है ताकि धरती की सीमा में ही उत्पादन और उपभोग हो। एक बिलियन भूखे और कुपोषित हैं जो दूसरे हैं। गांधी का नुस्खा विश्व की जरूरतों का समता के आधार पर और बिना किसी टकराव के समाधान कर सकते हैं।

आज की कानूनी व्यवस्था में इस बात पर बहुत कम विचार हुआ है कि वे वैश्विक दुःख और गैर टिकाऊ के पक्ष में कैसे काम करती हैं। उत्पादन–उपभोग के प्रारूप के अंतर्गत। संपत्ति का विचार और उसका बहुराष्ट्रीय स्वरूप की समीक्षा नहीं होती है। ऐसी सारी कम्पिनियाँ अपने उत्पादन के क्रम में हानि पहुंचाती हैं, संपत्ति के ऐसे उपयोग को देखें तो गांधी जी की आधुनिक सभ्यता की आलोचना याद आ जाती है। गुजराती में सभ्यता सुधारु है। गांधी ने बड़ी प्रखरता से कहा था कि सभ्यता तभी टिकाऊ और शान्ति ला सकेगी

यदि संसाधनों और व्यक्तियों के साथ सम्बंधों के बारे में वह पश्चिमी विचारों को बदल नहीं देती है। आज की उपभोग की आदतें कहाँ ले जा रही हैं यह विचार का प्रश्न है। गांधी जी से किसी पत्रकार ने जीवन के रहस्य को तीन शब्दों में व्यक्त करने को कहा तो ईशावास्योपनिषद को उद्धरित करते हुए कहा कि त्याग करो और आनंद करो। कुछ न चाहकर वास्तविक स्वतंत्रता मिलाती है। अनंत उपभोग की पक्षधर संस्कृति किसी स्थायी सुख की उपलब्धि नहीं करा सकती। इस तरह की व्यवस्था में भौतिकता प्रधान समाज दूसरों पर दब दबा बनाते हैं और अस्थाई और क्षण–भंगुर संतुष्टि ही देते हैं। एक घोर अंतर्विरोध है आनंद उपभोग में है और उपभोग अनंत है।

आज अध्ययन यह बता रहे हैं की सुख पर भौतिक समृद्धि का रिश्ता डिमिनिशिंग रेतुर्न का है। एक विन्दु पर धन की वृद्धि अपना महत्त्व खो देता है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति होने के बाद समृद्धि का असर उअतना नहीं होता है। डेनियल काह्नमन के हिसाब से 75000 हजार डालर तक तो वार्षिक आय और खुशहाली बढ़ाते हैं, पर उसके ऊपर समाप्ति और सुख के बीच कोई रिश्ता नहीं रह जाता। अत्यधिक भौतिक समृद्धि और सुख के बीच के कमजोर रिश्ते की बात वैज्ञानिक शोध से पुष्ट हो रही है। एक हेदानिक त्रदेमिल है। अनुकूलन के बाद और भौतिक सुख चाहते हैं। गरीबी से मुक्त के बाद तोड़ा सुख पर्याप्त है। इसी तरह अत्यधिक उपभोग अस्थाई है और लोगों को हेदोनिक त्रद्मिल में बझाए रखता है विश्व के अधिकाधिक संसाधन के उपभोग की चाहत रहती है।

भौतिक इच्छाओं से स्थायी सुख पाया जा सकता है। शाश्वत उपभोग की इच्छा के वश में पद कर वस्तुतः सतत असंतुष्टि को खरीदते हैं। नाखुशी और उपभोग के बीच का रिश्ता उन उद्योगों में देखा जा सकता है जो आत्म–संवर्धन से जुड़ी हैं। उपभोग की संस्कृति में पले बढ़े लोग तत्काल संतुष्टि की सोचते हैं। यह सतत बाजारीकरण का परिणाम है। बीसवीं सदी के आरम्भ में विज्ञापन का दौर शुरू हुआ था। उसने उपभोक्ताओं में असुरक्षा का भाव पैदा किया और उसकी तरकीबें भी ईजाद कीं। जनता को जितना ही ज्यादा असंतुष्ट रखा जाय यानी खरीददार असंतुष्ट रहे तो रोजगार में ज्यादा

नफा होगा। अतरू उपभोक्ता का दिमाग काबू में कर उत्पादों के लिए इच्छा पैदा करना स्वयं में एक धंधा बन गया। यह मान कर कि सामाजिक संस्थाएं व्यक्ति की रक्षा करेंगी कानून के दायरे में किसी भी तरह व्यापार करने की छूट है। अवांछित उपभोग पर अंकुश लगाने वाली संस्थाओं के अभाव में उपभोक्ता पर उन संदेशों की भरमार होती गई कि खरीदो नाखुश रहकर उपभोग के लिए लालायित बने रहें और उपभोग करते रहें, न कि दीर्घकाल की संतुष्टि करें। अंतहीन उपभोग सुखी नहीं बनाता।

गांधी जी इसे आधुनिक जीवन की कमी मानते थे। गाँव की अपेक्षा शहर की तेज रफ्तार जिन्दगी में बिना संतुष्टि की आदमी भागते–दौड़ते रहते हैं, भौतिकता की ललक को लक्ष्य बना कर प्रगति के मार्ग पर नीचे गिरते हैं। सड़कों पर कारें धक्कामुक्की भौतिक प्रतीक हो रहे हैं, पर इनसे खुशी बहुत कम मिलाती है। ऐसे व्याकुल आधुनिक भारतीय के लिए यम का देसी विचार आत्म नियंत्रण और चरित्र निर्माण की और ध्यान आकृष्ट करता है। इन नैतिक अभ्यासों का पालन आतंरिक शान्ति और सामाजिक समरसता मिलती है। गांधी जी दीर्घजीवी खुशी आवश्यक जरूरतों (नीड) से जुड़ी होती है, न की चाहों या इच्छाओं (वांट) से। जीने के लिए अहिंसा जरूरी है। अहिंसा और अपरिग्रह सीमाएं बनाते हैं। अभौतिक लक्ष्यों पर भी विचार करना होगा। आनंद का स्रोत तो अन्दर है। बड़े आकार की तेज रफ्तार कार, बड़ा घर अधिक फैशन की वेश भूषा से उपजाने वाला सुख घटती बढ़ती रहेगी। अतृप्त ही रहने वाली कामनाओं की पूर्ति करना इनाके अस्थाई स्वभाव को न समझने के कारण है। उच्च स्तर का सोचना उच्च विचार जटिल भौतिक जीवन के साथ संभव नहीं है. मूल मानवीय जरूरतें सरल थीं। यदि हम यह मानें की हमारा भौतिक अस्तित्व परिवर्तनशील है और हम साधनों को सीमित अवधि के लिए ही रख सकते हैं तो उस अप्रिसम्पत्ति को जाने देंगे। तब हेदोनिक ट्रेडमिल की बढ़ती इच्छाओं की समस्या खत्म हो जायगी।

अर्थाशास्त्रीगण भौतिक उपलब्धि को ही अंतिम लक्ष्य माना कर चलते हैं। वे उपभोग को मात्रा में देखते हैं। खर्च कैसे करते हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हर तरह का खर्च एक–सा ही होता

है। महात्मा गांधी टिकाऊ उपभोग के लक्ष्य के लिए गुणात्मक परिवर्तन चाहते हैं। अतः जीवन में सर्वप्रथम आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था होती है फिर गृहस्थी जमाने की। उसके बाद मानवता के लिए सोचना चाहिए। ऐसा करते हुए संसाधन का दबाब कम होगा और वैश्विक सुख और शान्ति आ सकेगी। अतः अपरिग्रह आवश्यक है और खुशी एक मानसिक दशा है। मनुष्य खुश या नाखुश गरीबी के कारण ही नहीं होता। धनी लोग भी नाखुश होते हैं। खुशी की अर्थव्यवस्था से समाज में शान्ति और निश्चिंतता बढ़ती है। गांधी जी ने नैतिकता को आर्थिक प्रगति से जोड़ा। स्वदेशी के विचार के साथ उन्होंने यह भी माना था कि हम अंश के रूप में ब्रह्माण्ड के हिस्से हैं, और हमें उससे जुड़ा दायित्व निभाना चाहिए।

प्रयाग की साहित्यिक पत्रकारिता

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-87831-60-1

संस्करण : 2018, मूल्य : 250/-

पाठालोचन

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-7-2
संस्करण : 2019, मूल्य : 1100/-

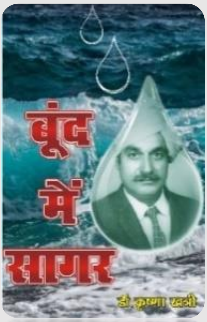

बूंद में सागर

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-8-9
संस्करण : 2019, मूल्य : 200/-

शेखर शिखर

चंद्रशेखर शुक्ल

आईएसबीएन : 978-81-929060-9-6
संस्करण : 2019, मूल्य : 251/-

कदम रखना मगर हौले से

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-5-4
संस्करण : 2020, मूल्य : 155/-

कोखजली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-3-0
संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

गले पड़ी गंगा

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-7-8
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

लेख

आविल और सिंग्विल्ल

अनुवाद एवं प्रस्तुति
डॉ. अनीता पंडा
सीनियर फैलो, आई.सी.सी.आर., नई दिल्ली
aneeta.panda@gmail.com

मेघालय की गारो, खासी एवं जैंतिया पहाड़ियों पर निवास करने वाली गारो, खासी और जैंतिया या पनार जनजातियाँ में लोककथाओ और मिथकों की मौखिक परम्पराएँ मिलती हैं, जिनको अगर सुनाया जाए तो कितने दिन–रात लगेंगे ? बताना मुश्किल है। तिब्बत की दुर्गम पहाड़ियों से आकर इस दुर्गम वनस्थली को अपना कर इस मिट्टी के संतान बन गए और यहाँ के वन्य जीव–जंतु, वृक्ष, पर्वत, वन प्रदेश आदि इनकी कथाओं में जीवंत हो गए। यद्यपि धर्मान्तरण ने इनके मूल आस्था को लगभग विलुप्त कर दिया है परन्तु ये कथाएँ अपने नैतिक मूल्यों के साथ अपना सफर तय कर रही हैं। इससे गारो जनजाति की संस्कृति, समाज व्यवस्था आदि के बारे में भी पता चलता है। यह कथा कबूतरों की विशेष प्रजाति के जन्म पर आधारित है।

एक समय की बात है कि गारो पहाड़ियों पर एक आदमी अपनी पत्नी के साथ छोटे से गाँव में रहता था। उस परिवार में उसकी एक विधवा सास और चार बेटियाँ थीं। उसकी दो बड़ी बेटियाँ आविल और सिंग्विल्ल थीं। वे उम्र में बड़ी थीं और घर के काम–काज में हाथ बँटाती थीं और उनकी दो छोटी बहनें दिमसे और नोजे बहुत छोटी थीं। उसकी

बूढ़ी सास स्वभाव से झक्की, दुखी और दुष्ट थी। न जाने क्यों वह अपनी दोनों बड़ी पोतियों से नफरत करती थी कि उन्हें उनके माता–पिता से पिटवाने और तकलीफ देने का कोई अवसर भी नहीं छोड़ती थी। जब उनके माता–पिता झूम खेती से वापस आते तो वह झूठी कहानियाँ बनाकर उनकी शिकायत करती। उनके माता–पिता आँख मूंदकर उस वृद्ध औरत की बातों पर विश्वास कर लेते थे। उन्होंने कभी उस पर संदेह नहीं किया, इसलिए जब भी वह बड़ी लड़कियों की शिकायत करती, तो बिना सच्चाई जाने वे वृद्ध औरत की तरफदारी करते और उन्हें बुरी तरह पीटते। दोनों को सफाई देने का मौका ही नहीं मिलता। अतः वे चुपचाप सबकुछ सहती रहती। दूसरी ओर बूढ़ी और झक्की औरत उन्हें तकलीफ में देखकर खुश होती थी। जब वे लड़कियाँ धान कूटकर चावल साफ करके एक बड़े बर्तन में रखतीं तो दुष्ट नानी उसे चुपके से बिखरा देती और वहाँ कुछ चूहे छोड़ देती या कोयले के टुकड़े डाल देती। इस तरह वह गन्दी चालें चलती। जब वे पानी भरती तो उसमें बालू, मिट्टी या कंकड़ डाल देती अक्सर पके हुए चावल या भात में बाल या गन्दी चीजें मिला देती। इस तरह पूरे साल एक के बाद एक हमेशा कुछ न कुछ चलता रहता और दोनों लड़कियाँ हर शाम अकारण अपने माँ–बाप से पीटी जातीं। मार खाना मानों उनकी नियति बन गई थी। उससे बचने का कोई उपाय नहीं था। नोसे और दिमसे इतनी छोटी थीं कि वे माँ–बाप से कुछ नहीं कह सकती थीं। अगर वे कहतीं तो भी उनके माता–पिता उन पर विश्वास नहीं करते। दुष्ट नानी झूठ बोलती और तरह–तरह की झूठी कहानियाँ गढ़ती।

एक दिन आविल का पिता अविल्पा बाजार गया। उन दिनों बाजार बहुत दूर होता था और कभी–कभी लगता था। एक बाजार से दूसरे बाजार लगने बीच में काफी अंतर होता था। ये बाजार एक ही स्थान में नहीं लगते थे। अतः बाजार भी नियमित नहीं होते थे। यह समय और स्थान पर निर्भर होता था। अविल्पा उस समय घर में नहीं था और हमेशा की तरह लड़कियों की माँ अविल्मा झूम खेती के लिए चली गई। उसने सूर्यास्त से पहले आविल और सिंग्विल्ल को कई काम पूरा करने के लिए कहा। उन्हें गोदाम से धान निकाल कर कूटना था और खाना बनाना था। सूअरों की देखभाल कर उन्हें खाना देना था। जैसे ही अविल्पा गई। दोनों बहनों ने गोदाम से धन निकालकर चटाई पर धूप में सुखा दिया। धीरे–धीरे उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया। वह दिन बहुत उमस भरा और गरम था। उनकी छोटी बहनें लगातार बड़ी बहनों से नदी में नहाने की जिद कर रहीं थी। आविल और

सिग्विल्ल ने उन्हें समझाया कि वे इंतजार करें, परन्तु वे नहीं मानी और रोने लगीं। उनको रोता देखकर बड़ी बहने तैयार हो गईं। उन्होंने अपनी नानी से अनुरोध किया कि चटाई पर सुखाए धान की देखभाल करें, क्योंकि वे छोटी बहनों को नदी में नहलाने ले जा रहीं हैं। जब वे नदी के किनारे पहुँची तो पानी में खेलते हुए माँ के दिए गए कामों को भूल गईं। दोपहर को जब वे लौटीं तो वे घबरा गईं क्योंकि चटाई पर धान का एक भी दाना नहीं था। उन्होने नानी से पूछा– 'नानी, धान के दाने कहाँ गए ?'

नानी के चिल्लाकर कहा– 'तुम दोनों मुझसे क्या उम्मीद करती हो ? तुम लोग किसी भी काम की नहीं हो! तुम लोग क्या समझती हो ? क्या मैं तुम्हारी नौकर हूँ ? भगवान के लिए तुम लोग समझो कि मैं तुम्हारी नानी हूँ, न की आदेश मानने वाली नौकरानी। जानकारी के लिए बता दूँ कि जैसे ही तुम लोग धान खुला छोड़कर गई, वैसे ही उस समय घर के सूअर, मुर्गे आदि आए और सारा दाना खा गए। मैं एक बूढ़ी औरत हूँ, मैं क्या कर सकती थी ?'

वास्तव में जैसे ही बच्चे वहाँ से गए, नानी को उन्हें तंग करने का सुनहरा अवसर मिल गया। उसने सारा धान कूड़े में डाल दिया, जिसे सूअर और मुर्गे ने खा लिया था। लड़कियों के काटो तो खून नहीं। वे बहुत डर गईं, क्योंकि उन पर भारी मुसीबत आने वाली थी। उन्होंने जल्दी से धान निकाला और कूटने लगीं। दुर्भाग्य से उनके काम पूरा करने के पहले ही उनकी माँ आ गई। उसके टोकरी रखने से पहले ही नानी शिकायत करने लगी– 'ओह! इन लापरवाह लड़कियों ने धान चटाई पर फैला दिया और पूरे दिन नदी के किनारे खेलती रहीं। धान को ऐसे ही खुला छोड़ दिया, इसलिए सूअरों और मुर्गों को खाने का मौका मिल गया। ये सूर्यास्त के बाद आईं हैं और तुम्हारे डर से धान निका कर कूटना शुरू किया है। इसलिए इन्हें सजा मिलनी चाहिए।'

उनकी माँ बहुत भूखी और थकी हुई थी। दिन भर कड़ी मेहनत करने के बाद जैसे ही घर पहुँची, उसे अपनी गैरजिम्मेदार बेटियों की शिकायत मिली। बिना सच्चाई जाने हमेशा की तरह उसने काँटेदार जलाने वाली लकड़ी निकाली और बेटियों को पीटने लगी। उन्हें इतनी बुरी तरह पीटा कि उनके चोटों से खून निकलने लगा। उनका पूरा शरीर चोटों से भर गया और वे बेहोश हो गईं। इतना ही नहीं उनकी माँ क्रोध में आकर उन्हें घसीटती हुई सूअरों के दड़बे में ले गई और उन्हें बंद कर दिया। उन्हें खाना–पीना भी नहीं दिया। बेचारी लड़कियों को सूअरों के बदबूदार दड़बे में पूरी रात अँधेरे में बितानी पड़ी। वे पूरी

रात भूखी–प्यासी रात भर रोती रहीं और अपने किस्मत को कोसती रहीं।

दूसरे दिन ही उनकी माँ ने उन पर दया नहीं दिखाई। उनका शरीर धूल से भरा, गन्दा था और उनके घावों से खून बह रहा था। वे भूखी–प्यासी थीं। इतनी कड़ी सजा देने के बावजूद भी उनकी माँ का गुस्सा कम नहीं हुआ था, उसने सूअरों का दड़बा खोलने से मना कर दिया और बिना उनकी परवाह किए झूम खेती के लिए चली गई। संयोग से सुबह कुछ बच्चे वहाँ पास में खेलने आए। वे गोल–गोल बीजों को फेंक–फेंककर खेलने लगे। उनमें से एक बीज दड़बे में चला गया। एक लड़का बीज निकालने के लिए वहाँ आया, जब उसने झाँककर देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि दो लड़कियाँ घायल अवस्था में पड़ी हुई हैं। उसने लड़कियों बड़े बीज को बाहर फेंकने का अनुरोध किया। आविल तैयार हो गई, परन्तु उसने बाहर का दरवाजा खोलने की शर्त रखी। इस तरह दोनों लड़कियाँ बाहर आईं।

आविल ने तुरंत अपनी बहन को गाँव में पंखों को इकट्ठा करने के लिए भेजा। उसने अपनी बहन से कहा कि वह जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अधिक से अधिक पंख इकट्ठा करके ले आए, जिससे वे खुद को कबूतरों में बदलकर यहाँ से कहीं दूर निकल जाएँ। जब दड़बे में थीं तो उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी दुष्ट नानी की शिकायत पर माँ–बाप से रोज–रोज मार खाने और दुर्व्यवहार से बचने के लिए भाग जाएंगी। आविल रसोई में गई और खाना बनाया। उसने एक मोटा कपोन (capon) मारा और उसके पंखों को रख लिया। मांस और मीठा खुशबूदार चावल पूरे परिवार के लिए पकाया।

जब छोटी बहन बहुत सारे पंख और गोंद इकट्ठा करके लौटी तो दोनों बहनें नदी में नहाने के लिए गईं। उन्होंने खुद साफ किया। वे उस दिन सुंदर दिखना चाहतीं थीं, क्योंकि इन्सान के रूप में उनका आखिरी दिन था। घर लौटकर उन्होंने बर्तन धोए, झाड़ू दिया और पानी भरा। जब सब काम हो गया तो आविल ने अपनी बहन से कहा कि अब समय हो गया है कि वे अपने आपको कबूतरों के रूप में बदल लें और उड़ जाएँ। वे रो रहीं थीं। दोनों ने एक दूसरे को गोंद लगाया और पंख चिपका दिया। काम पूरा होने के बाद दोनों ने एक दूसरे को देखा। वे सुंदर दिख रहीं थीं। अब वे लड़कियाँ नहीं चिड़ियाँ बन गईं थीं। उन्होंने पंख फैलाए, उन्हें सुखद लगा। हिचकिचाते हुए वे छत तक उड़ी, फिर घर के बाहर कटहल के पेड़ तक उड़ी। वे बहुत खुश थीं

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

और संतुष्ट भी क्योंकि अब वे उड़ सकतीं थीं। उन्होंने घर का एक चक्कर लगाया। 'उड़ना' उनके लिए एक नया अनुभव था। अब वे आजाद थीं, उन्हें मार–पीट नहीं सहना पड़ेगा। अतः वे उड़कर वहाँ पहुँची, जहाँ उनकी माँ झूम खेती कर रही थी, उन्होंने सोचा कि उनकी माँ भले ही उनके साथ कठोर व्यवहार करती थी, पर आखिर वह उनकी माँ है, वे अपनी माँ से बहुत प्यार करती थीं इसलिए उसे बिना बताए वे कैसे उड़ सकती थीं। जब घर में इतना सबकुछ चल रहा था, तब उनकी माँ उस समय खेती में व्यस्त थी। अपनी माँ को कड़ी मेहनत करते देख वे अपने आप को नहीं रोक पाई और रोने लगीं। वे पेड़ की एक डाल पर बैठ गईं और पक्षी की आवाज में रोते हुए कहा– 'मेरी प्यारी माँ! हमें बहुत दुःख है पर आज आप इतनी मेहनत किसके लिए कर रहीं हैं ? इधर आपकी दोनों बेटियाँ आविल और सिंग्विल्ल आपसे बताने आई हैं कि हम आपसे दूर जा रहे हैं और अब कभी वापस नहीं आएंगी। आपने हमारे साथ बहुत कठोर बर्ताव किया है, अब हम वापस कभी नहीं आएंगी। आपने हमारे साथ बहुत कठोर व्यवहार किया है। हमें काँटेदार लकड़ी से पीटा, सूअर के दड़बे में बंद किया और हमें भूखा–प्यासा रखा।' उन्होंने आगे कहा– 'माँ, हम आपसे कहना चाहते हैं कि हम दुष्ट नानी की साजिश का शिकार बनीं। हमने कभी ऐसा खाना नहीं ही बनाया, जिसमें चूहा या बाल गिरा हो, न ही बालू से भरा पानी रखा। वे सब काम नानी का है, जिसका फल हम दोनों बहनों को भुगतना पड़ा। माँ, हम दोनों ने बहुत सह लिया, अब हम आप से बहुत दूर जा रहे हैं। हम अब ज्यादा दुःख नहीं झेल सकते। हम आपसे विनती करते हैं कि आप हमारी छोटी बहनें नोजे और दिमसे को अच्छी तरह रखिए। उनके साथ बुरा व्यवहार न करे, न ही उन्हें पीटे जैसा आपने हमारे साथ किया था। वे अभी बहुत छोटी हैं और नासमझ हैं। अगर आप उन्हें प्यार से रखेंगी, तो वे हमेशा आपके साथ रहेंगी। कृपया उन पर दया करें।'

अविलमा चौंक गई। यह क्या हो रहा है ? यह बहुत असाधारण घटना थी। उसने कबूतरों को इंसानी भाषा में बातें करते नहीं सुना था। उसे बहुत बेचैनी होने लगी। कुछ देर पहले वह जिस कुदाली से काम कर रही थी, वह अचानक कई भागों से टूट गयी, जो की एक अशुभ लक्षण था और अब दो कबूतर इंसानी भाषा में बातें कर रहे थे। उसे अंदेशा हुआ कि घर में जरूर गड़बड़ हुई है। तब उसे याद आया कि उसने दोनों बेटियों को भूखी–प्यासी सूअर के दड़बे में बंद कर दिया है। वह मन ही मन में सोचने लगी कि उसने गुस्से में क्या कर दिया ?

उसने जल्दी से अपना सामान उठाया, टोकरी में रखा और घर की ओर चल पड़ी। वह सीधी सूअर के दड़बे की ओर गई और दोनों बेटियों को पुकारने लगी, परन्तु कोई जबाव नहीं आया।

संयोग से उस समय अविलपा दूर बाजार गया था, और सारी खरीददारी करके लौट रहा था। वह बहुत थक गया था, उसने सुना– '...इसलिए हम भले के लिए जा रही हैं। हमें दुःख है कि जब आप घर पहुँचेंगे, तब हम घर में नहीं होंगे। जो गल्तियाँ हमने नहीं की, हमें उसकी सजा मिली है। हमने यहाँ से दूर जाने का निश्चय किया है। हम अब कभी वापिस नहीं आएंगे।' यह सुनकर अविलपा चौंक गया। उसने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनी। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है ? सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि दो कबूतर इंसानों की भाषा में बात कर रहे थे। इसका अर्थ था कि घर में कुछ हुआ है। उसका मन शंकित हो गया, क्योंकि कबूतर इंसानों की भाषा में बात नहीं करते। उसने अपना सामान उठाया और भारी हृदय से घर चल पड़ा। घर पहुँचकर देखा कि सारी स्थिति बहुत खराब थी। उसकी पत्नी ने रोते–रोते सारी घटना बताई। अविलपा को बहुत धक्का लगा। उसने सोचा भी नहीं था कि ऐसा भी हो सकता है।

बाद में कबूतर बनी बेटियाँ दोपहर में एक बार फिर आईं। यद्यपि उन्होंने अपने आपको कबूतर के रूप में बदल लिया था, पर वे अपने परिचित जगह से ज्यादा दूर नहीं जाना चाहती थीं। वे भी अपने माँ–बाप को सच्चाई बताने के लिए बेचौन थीं। वे घर के बाहर कटहल के पेड़ पर बैठकर बोलने लगीं। उनकी हृदय विदारक ध्वनि सुनकर उनके माता–पिता बाहर आए। उन्हें अपनी भूल का अहसास हो गया था कि उनके खराब व्यवहार के कारण लड़कियों को कबूतर के रूप में खुद को बदलकर घर छोड़कर जाना पड़ा। वे बहुत रोए और सोचा कि अगर वे कोशिश करेंगे तो शायद उनकी बेटियाँ कबूतर का रूप छोड़कर पुनः मनुष्य रूप में आ जाएँगी। उन्होंने सच्चे दिल से प्रार्थना की– 'मेरी प्यारी आविल और सिंग्विल्ल, हमें क्षमा करो। तुम दोनों वापिस लौट आओ। हम सच्चे दिल से तुमसे माँफी माँगते हैं और वादा करते हैं कि हम तुम्हें कभी नहीं सताएँगे और न ही मारेंगे। कृपा करके तुम लोग लौट आओ।'

वे अंदर गए और घर से सोने का हार (रंग–गोंग्स) और कीमती सामान बाहर लाए, उसे आँगन में फैला दिया और कहा– 'देखो, ये सारा कीमती सामान हमने तुम्हारे लिए रखा है, ये सब तुम्हारा है। यह सच है कि हमने तुम्हारे साथ बहुत बुरा व्यवहार किया है। बिना कारण जाने

तुम्हें पीटा है, जबकि सारा काम नानी का था। हम लोगों की लापरवाही के कारण तुम लोगो ने बहुत दुःख भोगा है। प्यारी बेटियों, क्या तुम हमें मांफ नहीं कर सकती ? अपने को इन्सान के रूप में बदलकर वापिस आ जाओ।'

आविल और सिंग्विल्ल ने वापिस आने से इन्कार कर दिया। उन्हें माता–पिता के धन और भविष्य में अच्छे व्यवहार पर विश्वास नहीं था। उन्होंने बहुत दुःख झेला था और वे इससे बाहर आना चाहती थीं। अतः बड़े दुःख के साथ उन्होंने वापिस आने से मना कर दिया और वे रो पड़ी। उन्होंने कहा– 'नहीं माँ–पिताजी, अब बहुत देर हो चुकी है। अब हम वापिस नहीं आना चाहते हैं और न ही आपके कीमती सामान का हमें लालच है। हम आपके बिना भी जीवित रह सकते हैं। अगर आपको सचमुच देना है तो आप दो कीमती हार को लम्बे बाँस के ऊपर लटका दीजिए और हमें दे दीजिए। हम इसे आपके प्यार भरे उपहार की निशानी समझ कर पहन लेंगे। हम यहाँ से जा रहें हैं और कभी नहीं लौटेंगे। आप लोग हमारी छोटी बहनों के साथ अच्छा व्यवहार करना। जैसा हमारे साथ हुआ, वैसा मत करना।'

माता–पिता बेटियों को लाने में असफल रहे। उन्होंने दो कीमती हार लिए, और उन्हें लम्बे बाँस पर टांग दिया। वहाँ से दोनों कबूतरों ने एक–एक हार पहन लिया और अलविदा कहकर हमेशा के लिए उड़ गए। अंत में वे कबूतर परिवार के वंशज बन गए। जो दो. कृ मिवेपा और दो. कृ चिवेपा के नाम से जाने जाते हैं। कुछ कबूतरों की प्रजाति के गले में सुंदर हार का निशान, जो उनके माता–पिता द्वारा विदाई के समय दिया गया, वे दो. कृ मिवेपा और दो. कृ चिवेपा हैं। वे आविल और सिंग्विल्ल हैं।

कृष्णा की कलम से...

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-4-7

संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

लेख

साहित्य की लघु विधा : लघुकथा

अंकुश्री
प्रेस कॉलोनी, सिदरौल, नामकुम, रांची (झारखण्ड)
ankushreehindiwriter@gmail.com

विज्ञान की प्रगति से हुए औद्योगिकरण और शहरीकरण से आज का आदमी व्यस्ततम जिंदगी जी रहा है। फिर भी लोग कुछ पढ़ना चाहते हैं. यह शौक साहित्य से कम और समाचार पत्रों से अधिक पूरा होता है। समाचार तो आज का सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक और आर्थिक आवश्यकता के अनुरूप हो गये हैं। लेकिन बौद्धिक विकास या मनोरंजन के लिये साहित्य पढ़ा जाता हैं मोटा उपन्यास या लंबी कहानियां पढ़ पाने का आज न तो समय बचा है और न धैर्य ही। बैलगाड़ी से निकलकर अंतरिक्ष शटल में यात्रा करने वाला आज का आदमी वर्ष और महीने में नहीं, क्षण–क्षण में जीने लगा है। व्यस्ततम जिंदगी में ऐसे साहित्य की अपेक्षा है, जो साहित्य का पूरा मजा भी दे और समय भी कम ले। यह काम लघुकथा बखूबी पूरा करती है। आसपास फैली विसंगतियों को साहित्यकार नज़रअंदाज नहीं कर पाता। ऐसी ही परिस्थिति में लघुकथाएं जन्म लेती हैं। लघुकथा कटुता से भरा सत्य हो सकती है तो विसंग परिस्थितियों पर व्यंग्य भी। यह कोई चुटकुला अथवा बौद्धिक सलाद नहीं है। बोधकथा, उपदेश कथा, व्यंग्य कथा और प्रतीक कथा आदि से आगे बढ़कर लघुकथा स्वतंत्र विधा के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है।

लघुकथा अपने लघु रूप के कारण पढ़ने के बाद पाठकों के दिमाग में अपना स्थान बना लेती है। गाड़ी या बस में पढ़ी गयी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लघुकथाएं यात्रा के बाद धुएं की तरह यदि पीछे छूट जाये तो इसमें दोष लघुकथा का नहीं, पाठक की ग्राह्यता का है. लघुकथा ही क्यों, पढ़ी कोई भी बात ग्राह्यता के अभाव में मस्तिष्क से ओझल हो सकती है। यह पाठक की मानसिकता और मानसिक व्यस्तता पर निर्भर है कि पढ़ी गयी बातें उसके दिमाग में कितनी देर तक और कितनी गहराई तक रह पाती है। रचना किसी विधा की हो, धैर्यपूर्वक लिखी होने पर ही पढ़ने में मन गहराता है। पिछले कुछ दशकों में लघुकथाएं खूब लिखी गयी हैं, मगर धैर्यपूर्वक लिखी गयी लघुकथाएं ही अच्छी साबित हो पायी हैं।

लघुकथा लेखन के शुरूआती दौर में लघुकथाकारों में अधिकतर किसी न किसी साहित्यिक संस्था से जुड़कर साहित्य जगत में प्रकट होते थे। इन संस्थाओं में ऐसे लघुकथाकार भी थे, जिन्होंने एक या दो लघुकथाएं ही लिखी हों या जिनकी लघुकथाएं किसी स्तर को छू पाने में पूरी तरह समर्थ नहीं हो पायी हों। युवा रचनाकार समिति, लघुकथा लेखन समाज, अखिल भारतीय साहित्यकार परिषद, भारतीय युवा रचनाकार जैसे संस्थानों के सचिव या अध्यक्ष के रूप में लघुकथाकारों का प्रकट होना कुछ अजीब–सा लगता था।

कोई भी लघुकथाकार पहले व्यक्ति है, संस्था बाद में. ऐसे लघुकथाकारों को समझना चाहिये कि लघुकथा–लेखन का काम व्यक्ति करता है, संस्था नहीं. ऐसे लोग अपनी लेखन–क्षमता की कमी को ढंकने के लिये संस्थाओं के लेटरपैड का खूब उपयोग किया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि संस्थाओं से जुड़े लेखकों में कुछ का स्तर काफी अच्छा भी रहा। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में लघुकथाएं प्रकाषित की जाती हैं। पिछले दशकों में कुछ पत्र–पत्रिकाएं तो नियमित रूप से लघुकथाएं प्रकाषित कर रही थीं। मगर कुछ को छोड़कर अधिकतर पत्र–पत्रिकाएं लघुकथाओं का उपयोग फिलर के रूप में करती रही हैं। लघुकथा किसी पत्र–पत्रिका में जबरदस्ती घुसा दिये जाने या उसे उपयुक्त स्थान नहीं दिये जाने से उसके स्तर का पता नहीं चल पाता। पत्र–पत्रिकाओं के स्तर के अनुरूप लघुकथाओं का चयन करने से उसकी पहचान बनी रहती है।

प्रयोग में कुछ दुरुपयोग भी होता है। चित्रकला के क्षेत्र में साठ–सत्तर के दशकों में आधुनिकता के नाम पर रंग का भारी दुरुपयोग हुआ। लेकिन रंगों के दुरुपयेग के दौरान भी कुछ उपयोगी चित्र निकल आये। उसी तरह यह भी स्वीकार्य है कि प्रयोग के दौर में लिखी गयी लघुकथाओं में से कुछ काफी उपयोगी भी बन गयी हैं।

आसपास घटित किसी घटना को शब्द रूप दे देना लघुकथा नहीं है। घटनाओं से हम कथ्य ले सकते हैं, लेकिन कथानक का जाल तो लेखक को बुनना ही पड़ता है। पत्रकार किसी घटना को हू–ब–हू प्रस्तुत कर देता है, जबकि लेखक उसी घटना से अपनी रचना के लिये कुछ सामग्री ले लेता है। पत्रकार किसी घटना का वर्णन करता है, परंतु लेखक उस घटना से भावनात्मक रूप से जुड़ कर सृजन करता है। पत्रकार और लेखक में यही तो फर्क है।

किसी कहानी या उपन्यास में लेखक की उपस्थिति ज्यादा नहीं खटकती। किंतु लघुकथा में लेखक की उपस्थिति बुरी तरह खटकने लगती है। लेखक जिस लघुकथा में 'मैं' के रूप में उपस्थित रहता है, वह लघुकथा कम, घटना अधिक लगने लगती है। ऐसी लघुकथाएं पढ़ते समय लगता है कि लेखक साहित्य–सृजन नहीं कर रहा है, बल्कि किसी पढ़ी या देखी गयी घटना को संस्मरण के रूप में सुना रहा है।

कुछ लघुकथाएं काफी लंबी होती हैं तो कुछ गिने–चुने शब्दों की. प्रायः ऐसा देखा गया है कि लंबी लघुकथाएं कहानी–सी लगने लगती हैं और बहुत कम शब्दों की लघुकथाएं चुटकुला बन जाती हैं। लघुकथा इतने शब्दों की होनी चाहिये कि वह एक से दो सांस में पढ़ी जा सके। सफल लघुकथा पढ़ने के बाद ऐसा महसूस होना चाहिये कि कुछ पढ़ा गया है। दिमाग में उसका प्रभाव घूमना चाहिये।

किसी राष्ट्र के निर्माण में उसके साहित्य का बहुत बड़ा योगदान होता है। अपने स्पष्टवादी और लघु रूप के कारण साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लघुकथाएं इस कार्य में अधिक प्रभावोत्पादक साबित हो रही हैं, क्योंकि इसमें छोटे–बड़े हर विषय को छूने और समाहित करने की क्षमता है।

लघुकथाओं के विषय यों तो अनन्त हैं, लेकिन अधिकतर लघुकथाएं पुलिस, सरकार, आफीसर, मंत्री, नेता, भ्रष्टाचार, दहेज, स्त्री शोषण, जाति, रोजगार और रोटी के इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं. इन विषयों पर काफी लघुकथाएं लिखी गयी हैं। हम कह सकते हैं कि विषयों का सीमांकन इस बात का इशारा है कि उपरोक्त विषय देश की राजसामाजार्थिक स्थितियों को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।

विभिन्नता लघुकथा की विशेषता है। अधिकतर लघुकथाएं व्यंग्यात्मक होती हैं। इसके इसी गुण के कारण लघुकथा को लघुव्यंग्य कहने का भी प्रयास किया गया। लघु व्यंग्य, लघु हास्य आदि सभी विषयों को साहित्य की अलग–अलग विधा का रूप देने का प्रयास करना न तो साहित्य की सृष्टि है और न किसी विधा की संपुष्टि ही। कथात्मक लघु रचनाओं की भिन्न–भिन्न विधाओं को अलग–अलग नाम न देकर इन सबों को लघुकथा के अधीन रखना ही बेहतर है।

साहित्य वह नहीं है, जो केवल साहित्यकारों के काम आये, बल्कि साहित्य की सफलता इस बात में है कि वह जनसाधारण से कितना अधिक जुड़ पाया है। देवकीनंदन खत्री के 'चन्द्रकांता' ने एक समय जनसाधरण को साहित्य से जोड़ने का बहुत बड़ा काम किया था। आज साहित्य से जन साधारण को जोड़ने का काम लघुकथा कर रही है।

बड़े–बड़े साहित्यकारों की महंगी–महंगी और मोटी–मोटी किताबें सरकार या संस्था के खर्च से खरीद तो ली जाती हैं, मगर वे पुस्तकालयों की कीमती आलमारियों तक ही सीमट कर रह जाती हैं। एक प्रतिशत–शिक्षित लोग भी वैसी कीमती किताबों से साक्षात्कार नहीं कर पाते। लेकिन लघुकथा साहित्य का वह अंग है, जो जनसाधारण के लिये सर्वसुलभ है।

साहित्य के सम–सामयिक होने के कारण इसकी कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक या अन्य पूर्व स्थापित सभी विधाओं में प्रयास और परिवर्तन होते रहता है. लघुकथा भी नित नये प्रयोगों से अछूता नहीं है. इसको इसी रूप में स्वीकार करने में सभी को खुशी होनी चाहिये।

❖

व्यंग्य

नया रावण

दीपक क्रांति
तेलगांव, गुमला, झारखण्ड
deepakkranti225@gmail.com

ना कोरोना खतम हो रहा था और लॉकडाउन ना 'रद्द' हो रहा था। ऐसे समय में, सृष्टि में सबके पालनहार सह सृष्टि के विषाणु विशेष के देवता विष्णुजी के फिलहाल धरती से 'नदारत' देवता नारद मुनि नर–नारी लोक का संदेशा लेकर आते हैं और नारायण–नारायण के स्थान पर 'कोरोनायन–कोरोनायन' का जाप करते हुए कमलनयन के समक्ष उपस्थित होते हैं।

नदारत मुनि : प्रभु, पृथ्वीलोक पर गजब हो गया है, चारों तरफ सन्नाटा है। प्रभू ये आपकी कैसी लीला है ? लोग श्री विष्णु से भले ही ना डरें, लेकिन विषाणु से डर रहे हैं! प्रभु ये वही लोग हैं जो चंद्रदेव के वक्षस्थल पर अपने चरण–पाद रखने को आतुर रहते थे! हे पालनहार, परमपिता ब्रम्हा की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य आज दूसरे मनुष्य को भी संशय की दृष्टि से देख रहा है! पैसा–पैसा करनेवाला पापी मानव सिर्फ अन्नदाता और 'डाटा' के सहारे जी रहा है! घरबंदी छायी है प्रभू! (मन में– लेकिन नसबंदी

नहीं) इस परिस्थिति में भी कामदेव की कृपा से जनसंख्या वृद्धि के दूरगामी परिणाम दिख रहे हैं प्रभू! अपनी लीला से अवगत कराएं प्रभू! कोरोनायन–कोरोनायन! मैं विचरने गया था, पर लॉकडाउन 'ना रद्द' होने से ये नारद वहां से नदारत हो गया प्रभु!

पालनहार श्रीविष्णु : मेरे प्रिय पृथ्वीलोक से नदारत नारद! ये मेरी ही मोह–माया है एवं यह जो तथाकथित 'कोरोना' है, इसमें बस रोना है! क्योंकि यह शाब्दिक अर्थ 'रोने वाला' अर्थात् रावण का ही कलियुगी अवतार है! वास्तव में ऋषि वाश्रवा पुत्र रावण महापंडित–महाज्ञानी था, जो उस युग में अपने ज्ञान को पूरे विश्व में प्रचारित–प्रसारित नहीं कर पाया था, परन्तु इस कोरोनावतार में वह विषाणु के रूप में जन–जन को आत्मज्ञान और सत्य–ज्ञान के सन्देश को पहुंचा रहा है! मेरे भारतवर्ष के प्रिय भक्त मोदी ने जो घरबंदी किया है, यह इस युग में भी 'लक्ष्मण–रेखा' का द्योतक है, जिसमें हर 'अमिताभ' को 'रेखा' के साथ रहना है! अगर 'जया' से शादी हो गई हो तो बस पड़ोस की श्रेखाश को देखना है!

नारद : अब समझा प्रभु कि रामायण का पुनः घर–घर प्रसारण भी आपकी ही लीला है! पर प्रभु फिर इस परिस्थिति में बच्चों का क्या होगा प्रभू!

श्रीविष्णु : 'रेखा' के बच्चे नहीं हैं नारद!

नारद : पर सैकड़ों 'अमिताभों' के बच्चे तो हैं प्रभु! वो लोग 'लक्ष्मण–रेखा' या 'अमिताभ–रेखा' को नहीं समझते, उनका क्या होगा प्रभू!

श्रीविष्णु : वे मोह–माया यन्त्र अर्थात मोबाइल में मग्न रहेंगे नारद!

नारद : –क्या ये घरबंदी घर–घर नसबंदी का भी मोदी–आदेश लेकर आएगा प्रभु ?

श्रीविष्णु : मेरे प्रिय पुत्र मोदी के कुछ निर्णय मैं भी नहीं बता सकता नारद, परन्तु संभवतः किसी पहले महीने के पहले दिन के एक तारीख को एक बजे वह घोषणा कर सकता है– 'हम दो हमारे एक' के आदेश की, क्योंकि उसका भारत तो आखिर 'एक' है नारद!

नारद : जो मजदूर भारतवर्ष में यत्र–तत्र फंस गये हैं, उनका क्या होगा, प्रभु!

श्रीविष्णु : मजबूरी ही तो मजदूरी है, प्रिय नारद !

नारद : जो सरकारी आदेशों के विरोध में भी यहाँ–वहाँ बंदरों की

तरह नाच कर कोरोना फैला रहे हैं, उनका क्या प्रभु ?

श्रीविष्णु : नारद ये लोकडाउन में नाचनेवाले मेरे रामावतार की वानर–सेना नहीं अपितु संहारक शिव–शंकर के भक्त रावण के कलियुगी अवतार कोरोना के राक्षस–दल हैं, परन्तु ये नया रावण साउथ फिल्मों के विलेन प्रकाश राज जैसा सनकी है, जो अपनी राक्षस सेना को सबसे पहले मारता है, आंकड़े देख लो नारद!

नारद : मंदिर–मस्जिद समेत सारे अन्य देवालय आदि भी बंद हैं, फिर देवों की कृपा मानवों पर कैसे होगी प्रभु ?

श्रीविष्णु : नारद अभी मानवता ही सबसे बड़ी पूजा है! वर्दीधारी मानव ही देवों की सेना के अवतार हैं! श्वेत वस्त्रों से आच्छदित चिकित्सक ही देवदूत हैं, जो 'यमदूतों' रक्षा कर रहे हैं !

नारद : अंतिम प्रश्न प्रभू, आपके मास्क लगे मुख से और पृथ्वीवासियों के मुखमण्डल से मैंने 'लॉकडाउन' शब्द बहुत सुना प्रभू, कृ पया अपने स्तर से इसे परिभाषित करें प्रभू!

श्रीविष्णु : लॉकडाउन का 'लोक' वास्तव में पृथ्वीलोक और नरकलोक का प्रतीक है अर्थात् जिसने सभी सरकारी आदेशों को अपने स्तर से 'डाउन' कर दिया अर्थात् पालन नहीं किया वह सीधे नरक–लोक में प्रवेश करेगा!

नारद : यह मुखलंगोट (मास्क) आपने क्यों नहीं लगाया प्रभु! इसमें आपकी क्या लीला है ?

श्रीविष्णु : नारद यह मुखलंगोट पृथ्वीलोक के लिये है, जिसका अर्थ है जिसे बिना मुखलंगोट घूमने की इच्छा है, वह सीधे स्वर्ग या नरक में आ सकता है! हम स्वयं 'स्वैग' से करेंगे, उनका स्वागत!

नारद : प्रभू, मैं भारतीय मीडिया के तरफ से ये प्रश्न लेकर आया था, जिसे भारतीय मीडिया अतिशीघ्र प्रसारित करेगी, आखिर मैं सभी पत्रकार बंधुओं का आदि–गुरु ठहरा प्रभु! मैं धन्य हुआ मुझे भी भारतीय मीडिया के जैसा धर्म–कर्म निडर होकर फैलाने का वरदान दें प्रभु! पृथ्वलोक के कोरोना फाइटर्स को भी शक्ति दें प्रभु!

श्रीविष्णु : तथास्तु! और हाँ नारद, तुम यत्र–तत्र घूमते हो! मुखलंगोट (मास्क) धारण करके ही विचरण करना!

नारद : अवश्य प्रभु! आप धन्य हैं प्रभू, रावण मतलब रोनेवाला और कोरोना शब्द में भी में भी सम्मिलित 'रोना' शब्द। वाह प्रभु, कोरोना रूपी आज के रावण का सटीक और अद्वितीय विश्लेषण है प्रभु आपका! नमन प्रभु! करोनायन–नारायण, कोरोनायन–नारायण!

यकीन

शालिनी सिंह
shalinisingh212601@gmail.com

बची रहेगी दुनिया की खूबसूरती
किसी बच्चे की खिलखिलाहट में
प्रेयसी की दबी मुस्कुराहट में
किसान के बहते पसीने में
सुस्ताते मजदूरों के गूँजते हँसीठठ्ठों में
वंसत में लहलहाई धरती में
वर्षा की झरती बूंदों में
सदियों के अभ्यास का प्रतिफल है
ये जिजीविषा
इतनी आसानी से हार मानने वाली
नहीं है मानुष जाति
तबाही के इस दौर में
जीवन भले ही अनिश्चित है
हर सुबह एक नई आशा लेकर आयेगी
मुझे पता है
ये निश्चित है
बस तुम्हें मेरी बात पर यकीन करना होगा।।

कविता

उनकी नजरों में

उनकी नजरों में
वह आदमी
दुनिया का सबसे निठल्ला आदमी है!

वह जो खेत जोतता है
फसलें उगाता है
सबका पेट भरता है

वह जो जी तोड़ मेहनत करता है
सबके घर बनाता है
खुद बेघर रहता है

वह जो सुबह–सुबह
नालियाँ, सड़कें
और सबकी गन्दगी
साफ करता है

वह जो तड़के ही
अखबार फेंकता है
देश–दुनिया की खबरें बाँटता है

वह जो सब्जियों के
ठेले लगाता है
जिंदगी में स्वाद भरता है

वह जो रिक्से चलाता है
सबको गंतव्यों तक
ढोकर ले जाता है

हाँ, उनकी नजरों में
ये सब आदमी
दुनिया का सबसे निठल्ले आदमी हैं!

प्रेम नंदन
premnandanftp@gmail.com

क्या लगाकर हिसाब बांटोगे।
चार में इक गुलाब बांटोगे।।

बाल जिसके सफेद जिस वय में
हर किसी को खिज़ाब बांटोगे।

किस तरह जब हजार प्यासे हैं
चार–छह बूंद आब़ बांटोगे।

आज तक क्या लुटा रहे थे तुम
छोड़ जिसको कि ख़्वाब बांटोगे।

कौन पीते यहां उन्हें पकड़ो
क्या कि सबको शराब बांटोगे।

प्रश्न है आंख कौन फोड़ेगा
शहर–भर में किताब बांटोगे।

देश–भर से सवाल आये लख
एकता ! इक जवाब बांटोगे।

केशव शरण
keshavsharan564@gmail.com

❖

कविता

अकिंचन

रोज निकल पड़ता हूँ
अपने पथ पर
लेकर मन की
स्वप्निल अभिलाषाओं को
लेकिन इस तमोमय भवनिधि में
किसे नजर आएगी
मेरे मन की
खामोश वेदना, असह्य पीड़ा
और करुण चीत्कार

जानता हूँ
तुम दाता हो
और मैं अकिंचन
शायद याचकता ही
मेरी धरोहर है
इसलिए गुजार लेता हूँ
किसी के सहारे
दुखी और व्यथित
अधूरे जीवन को

हे विधाता!
क्या तुम भी हो गए हो
रुष्ट मुझसे
नहीं है डर ?
इस बात का भी
कि कैसे गुजरेगी
ये जिन्दगी
लेकिन इसी आस पर तो
दुनिया कायम है
कि चोंच दी है
तो चुग्गा भी मिलेगा ही ।

नवीन गौतम
naveengautam9829@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पुस्तकालय की व्यथा

सन्नाटों में भी चहकता पुस्तकालय
आज एकदम वीरान है।
बंद दरवाजे व खिड़कियाँ
पर अंदर ज्ञान का भण्डार है।

पुस्तकों की शिला,
किसी के स्पर्श व खुलने को आतुर है।
पर बंद हैं सड़के
और कोई ना पहुँचने पर मजबूर है।

गहराता स्तब्ध वातावरण
गूगल का ही करता प्राचार
पर इन पुस्तकों की
व्यथा पर कोई ना करता विचार।

ऑनलाइन के सागर में
ई–लाइब्रेरी का है बोलबाला
पर धूल खाती पुस्तकों से ही तो
अस्तित्व है इनका सारा।

रहिमन की वाणी कबीर के दोहे गीता का ज्ञान,
वेदान्त उपनिषद का ज्ञान एक्सेस सारे करते
ट्रान्समीटर का ज्ञान पर पन्नों की सरसराहट
वह अंदर कागजों में लगे बुकमार्क
वह प्रेम की फूल–पत्ती, सूखे पन्नों का एहसास
वह फटे पन्नों की अधरी लाइनों को पूरा करने और
खोजना शब्द भण्डार सब सीमित है।
आज एक मोबाईल में और वीरान पुस्तकालय भी सिमट गया है
मास्क रूपी रजाई में।

प्राची अनर्थ
aprachi123@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

ऑनलाइन के भूत

ऑनलाइन के भूत
सुबह–सबेरे डेरा डाले
दे रहें रोज आवेदन
ऑनलाइन मिले कोई
तब हो कोई काम खतम।

आठ बजे तक 'सुप्रभात' बेचारे
जाने कितने मैसेज दे डाले
और दस बजे तक यही सिलसिला
पकड़–पकड़कर सर दर्द कर डाले।

ग्यारह बजे तो क्या हुआ
अभी तो नाश्ता–पानी पुछा नहीं
दमभर फिर उसी बहाने
चौटिंग करने को मिले सही।

कुछ भूत तो बड़े अदब से
दुआ सलाम से ही काम चलाते
कुछ इधर उधर की बाते करके
और बचा–खुचा दिमाग खा जाते।

दोपहर में तल्लीन से सोयू
अपने कहाँ नसीब में भैया
वैसे हम भी कोई कम कहाँ हैं
मजाल है जो कोई सोये।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

शाम की सेल्फी आते–जाते
लव –लाईक कमेंट बॉक्स में
कितने तो नम्बर दे डाले।

पढ़ना–लिखना घर के काम
ऑनलाइन की ऊँगली थाम
सारे सवाल बायजू ज्ञान के
कुछ मैसेंजर संग लगाये।

रात के भूतों का क्या कहना
बिना बात के कॉल लगाकर
गुड नाइट की याद दिलाये।

कुछ तो हैं रात के निशाचर
सॉंग्स पार्टी के बहाने
प्रतिष्ठा में प्राण गवायें।

अब अपनी तारीफ में क्या कसीदे गाऊं
कह दूँ अपना नाम तो पिट ना जाऊं
बस अब मौन होकर कलम रखती हूँ
कैसे कहूं की मैं भी वो हस्ती हूँ।।

स्नेहलता
ssneha.di@gmail.com

कविता

कुमुदिनी

जमाने भर की लानतों से
पथरीले शब्दों के प्रहारों से
गड्ढों में कर दो तब्दील
मेरी जिंदगी को।

कुछ नहीं कहूँगी तुमसे
हालांकि कह सकती हूँ मैं
पर कहूँगी नहीं
और न ही मरुँगी मैं।

दबी रहूँगी यहीं कहीं
मिट्टी की परतों में
करुँगी इंतजार
सावन–भादो के आने का
जब आसमान में छाएगा बादल
झूम–झूम बरसेगा जल
गड्ढे हो जाएंगे लबालब
और मैं उस गड्ढे में
खिल उठूँगी एक दिन
सफेद कुमुदिनी की तरह।

रानी सिंह
raniksingh77@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ग़ज़ल

सलिल सरोज
salilmumtaz@gmail.com

जब भी मेरा किरदार बताया जाएगा।
दावा है, वो असरदार बताया जाएगा।।

मैंने बचाया है कविताओं को मरने से
मुझे सभ्यता का पहरेदार बताया जाएगा।

मैंने बोए हैं कितने ही अनकहे अहसास
मुझे नई फसलों का जमींदार बताया जाएगा।

जितना भी पाया, अपनी मेहनत से पाया
रकीबों में भी मुझे खुद्दार बताया जाएगा।

ना कोई लाग–लपेट, ना कोई छींटाकशी
मेरी सीरत को धारदार बताया जाएगा।

कल को अगर मैं ना भी रहा तो क्या होगा
मेरी बातों को पर जानदार बताया जाएगा।

कविता

तालाब, नदी और सागर

हम टहला करते हैं
तालाब के किनारे
नदी के घाट पर
या सागर तट पर,
तालाब का किनारा
संस्कृति की देन है
नदी का घाट संस्कृति
और प्रकृति की है साझी
तथा सागर तट है
विशुद्ध प्राकृतिक।

तालाब किनारे बैठते हैं
नदी किनारे टहलते है
सागर तट पर लेटते हैं
उसकी लहरों को देखतें हैं
उसके फेनों संग खेलते हैं
लेकिन तालाब।
जिसमे वर्तुल नहीं है
हम कंकड़ी फेंकते हैं
वर्तुल सृजित करते हैं,
नदी देती है दोनों का मजा
तालाब का भी, सागर का भी।

सागर नित रंग बदलता है
लालिमा, नीलिमा से कालिमा तक
मचाता है शोर, करता है गर्जन
सुनो, सुनो! और मेरी सुनो मेरी बात!
लेकिन तालाब और नदी को
हम सुनाते है अपनी बात
हंसकर भी, गाकर भी, रोकर भी।
तालाब घर है, नदी परिवार है
और सागर है– संविधान सभा।

डॉ. जयप्रकाश तिवारी
dr.jptiwari@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नियति

मोतीलाल दास
motilalrourkela@gmail.com

तुम्हारे
घर लौटने पर
खुश हो जाती हूँ मैं

और जब कभी
तुम देर से लौटते हो
चिंतित हो जाती हूँ मैं

इधर जब मैं लौटती हूँ घर
निश्चित हो जाते हो तुम

और जब कभी
मेरे लौटने में देरी होती है
शक करने लगते हो तुम

आखिर ऐसा क्यों है
हम दोनों के बीच।

संकट

बड़े मरते हैं
और बच्चे
अनाथ होते हैं

बच्चे मरते हैं
और बड़े
चर्चा करते हैं

इस चर्चा में
वे शामिल करते हैं
अपने पड़ोसियों को
रिश्ते–नातों को
अखबारों को भी

जबकि खुद
बच्चा होना चाहते हैं
ठीकठाक बच्चे की ही तरह।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

छठ मइया

छठ मइया का करते हैं हम
पूरे बरस हृदय से वंदन।
गोबर से बचपन में मैया
लीपा करती घर और आँगन।

पूरे बरस करें प्रतीक्षा
मइया सबका घर–ओसार
परदेसी घर वापस लौटे
घर आंगन सब उनके महके।

छठ व्रत की है बड़ी महत्ता
पूरी करती मैया सबकी मनसा
देती सुख समृद्धि अपार।

सूर्य भगवान को अर्ध्य देकर
आह्लादित हो मन सबका
मैया तेरी आशीष पाकर
पावन हुआ
आज हृदय हम सबका।

ठेकुआ, सिंघारा और मखाना
गाएं सब छठ मइया का गाना
हृदय से भाव विभोर
उत्सुक हो सब
जल में उतर
करें स्मरण सब।

करके जतन पूरे
व्रत रखें हम मइया
दोनों वेला सूर्य देवता की
करें प्रतीक्षा
करें हम व्रत तेरा मइया
मइया हमरी लाज रखो तुम
टूटे न ये
आस्था और विश्वास
सभी के कष्ट हरो तुम।

मइया तुमसे जीवन हमरा
तुमरे बिना अधूरे हैं हम
बनकर हमरी तुम खेवैय्या
पार लगा दो जीवन नैया
दुराभाव न कभी सताए
आपस में कबहुँ न दूरी आए
मिलकर रहें हम सब सारे
कष्ट कोई न हमरी निकट आए
निष्काम निस्वार्थ भाव से
एक दूजे के काम सब आवें।

बारम्बार नमन हे मइया!
तेरे चरणों में हम करते
खुशहाली लेकर तुम आना
हर बरस हम तेरी
राह हैं तकते।

गलती अगर कोई हो माता
कभी न उसको दिल से लगाना
बालक तेरे हम नादान
तुझको ही तो
हम सबका ध्यान
आस अकेली तू है माता
तुझसे है जनमों का नाता।

डॉ. दीपा 'दीप'
deepaneemwal@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता मरती नहीं

कविता टूटती फूटती
कविता गिरती पड़ती

कविता छली जाती
तो रूलाई भी जाती

कभी बिसराई जाती
कभी ठुकराई जाती

कविता का चमन होता
उसका आसमान होता

पंख कतर दिये जाते
घाव कभी दिये जाते

शब्द तो छीने जाते
भाव हर लिये जाते

स्वार्थ तले कुचली जाती
तो ठगी भी बहुत जाती

कविता रोते रोते ही हँस देती
कविता गिर के फिर चल देती

चांद से पन्नों पर उभरती
रात की स्याही ले दमकती

रात को ओस सी झरती
दिन में बर्फ सी पिघलती

कविता कभी ना तो मरती
कविता मरने भी ना देती।

डॉ. महिमा श्रीवास्तव
jlnmc2017@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नारी नहीं बेचारी!

जुल्म सहेगी ना अब नारी ,
मत समझो इसको बेचारी।
घर,बाहर ये कभी न हारी,
हर बाधा पर पड़ती भारी।
देश का ये अभिमान बढ़ाये,
क्यों समुचित सम्मान न पाये।
भ्राता, तात से कुछ न माँगे
हँस करके सारे सुख त्यागे।
पति से कहती कर आभास
हर पल हूँ तेरा विश्वास ।
सफल तभी परिवार हुआ,
जब नारी सत्कार हुआ।
वीराने को महल बनाती,
हर मुश्किल का हल बन जाती।
भक्ति, शक्ति, श्रृंगार है नारी
मत समझो इसको बेचारी।

आसिया फारूकी
asiyafarooqui60@gmail.com

कविता

चंद्र

रूहानी प्रेम की तपिश में,
धवल ज्योत्सना से मिलने,
चंद्र जज्बातों का,
मिलने प्रीत की,
दहलीज पर आएगा।
सोलह श्रृंगार कर सजनी,
ओढ़कर लाज का गहना,
मधुर मिलन की राह में
मधु,,चंद्र समर्पण का,
मिलने इंतजार की,
दहलीज पर आएगा।
सुभाषित अनुबंध के साज,
गुंजित प्रणय राग की सरगम,
छलकी हसरतों की मधुशाला,
चंद्र अनुभूति का,
मिलने मनोभावों की,
दहलीज पर आएगा।

मधु वैष्णव 'मान्या'
madhusabilusa@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

अस्मिता की आवाज

कविता

एक जिन्दा सी लड़की मृत हो गयी
जीते जी अस्तित्व खो दिया
नैतिक मूल्यों की विलुप्त सत्ता में
उसकी अंतरात्मा पर प्रहार हो रहा
कैसा समाज है ये हमारा
जहाँ दोष किसी का दोषी कोई ओर हो रहा!

अस्मिता पर उसकी प्रश्नचिन्ह लगा दिए
जो बैठे हैं आसीन पदों पर
हैं समाज के ठेकेदार वही क्या
जीने का भी हक वो देंगे क्या
जीवित होकर भी जीने का अधिकार छीन रहा!

पुरुष के सत्तामयी समाज में
फिर प्रश्न नारी की ही ओर उठ रहे
अधिकारों की बात करते हैं ये
लेकिन जीवन का अस्तित्व छीन रहे
ऐसे कृत्यों के दोषी को
मानसिक रोगी ही बताकर दोष नारी पर ही मंढ रहे!

खुद एक रोग से ग्रस्त समाज ये
जीने की परिभाषा बता रहा
कैसी होगी वेशभूषा उसकी
चारों ओर यही प्रश्न उठ खडे हुए हैं
पुरुष के गुनाह को एक गलती भर बताकर
नारी के जीवन की स्वतंत्रता का अधिकार छीन रहे!

आये दिन बलात्कार हत्याएं हो रहीं
बस मोमबत्ती लगाकर
ये भी अपने कर्तव्यों को पूर्ण मानते!
आधुनिकता के समाज में
खुद को ये आधुनिक हैं कहते
क्या यही समाज का आधुनिक रूप है!

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जो जीने की बात हैं करते
वही कदम कदम पर अपमानित कर रहे
क्या यही दोष है उसका
केवल जीवन जीने को अपना अधिकार माना
एक उसकी अस्मिता का दोषी,
एक उसके अधिकारों का दोषी
फिर भी इस समाज में दोषी नारी!

ऐसा होता है आखिर क्यों
हर बार यही प्रश्न उठ होते खडे हैं
न्याय के लिए भी दर–दर आज फिर से भटक रही है नारी
दोषी घूम रहा है खुलेआम फिर भी दोषी हो गयी नारी!

बस दोष यही था उसका
पुरुष के सत्तामयी समाज में
पंख फैलाकर उसने जीना चाहा
अभी तो उड़ भी नहीं सकी थी ठीक से,
पंखों को उसके काट दिया,
खत्म कर दी पहचान उसकी
उसके उड़ने को दोषी बना दिया
क्यों नहीं समझते हैं सब जन समाज में!

कपड़ों को वो दोष दे देते हैं,
कपड़ो से ही अगर बलात्कार रुकते
तो खिलौनों से खेलती बच्चियाँ
किसी की हैवानियत का शिकार ना बनती
ना रोते आज माता पिता बेटियों को जन्म देकर
भयाक्रांत इस समाज में डर–डरकर हैं वो जी रहे
ये कैसा समाज है
जो हर बार दोष नारी पर ही गढ़ रहा!!

डॉ. गरिमा त्यागी
tyagidrgarima@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

ग़ज़ल

अपनी बेचैनी को ढोना पड़ता है।
जो ना होना था वो होना पड़ता है।

मेहनतकश की उजरत बस इतनी सी है,
अक्सर भूखे–प्यासे सोना पड़ता है।

ऐसे पल भी आते हैं इस जीवन में,
हँसना–गाना रोना– धोना पड़ता है।

किरची–किरची उम्मीदें बिखरीं सारी,
धीरे–धीरे सबकुछ खोना पड़ता है।

मुट्ठी भर दाने की खातिर दहकां को,
खून– सीना खेत में बोना पड़ता है।

जिस 'छोटू' की खातिर थे कानून तमाम,
उसको बरतन अब भी धोना पड़ता है।

नज़्म सुनो! अब आँखों में आने दो नींद,
कुछ पाने को ख़्वाब संजोना पड़ता है।

नज़्मसुभाष
nazmsubhash97@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

कहानी

शुरू किया था
मैंने भी
लिखना एक कहानी
बहुत पहले
बहुत बहुत पहले
जब नई नई
आई थी जवानी
वो कहानी अभी तक
लिखी जा रही है
लगातार लिखी जा रही है
लगातार लम्बी होती जा रही है
जब भी नजदीक आता है
कहानी का अंत
फिर कहीं से निकल आता है
उसका कोई पात्र
किसी नए घटनाक्रम के साथ
जिससे फिर से चल पड़ती है कहानी
नए घटनाक्रम को लेकर
उसे पात्रों के साथ बुनते हुए
जरूरी मोड़ों को चुनते हुए
बरसों से लिख रहा हूँ
जानता हूँ कि इस कहानी का
पूरा होना जरूरी है
फिर भी मेरी ये कहानी
अभी तक हुई न पूरी है
क्योंकि मेरी भी ये मजबूरी है
कि जिन्दगी अभी तक अधूरी है!

डॉ. शैलेश शुक्ला
poetshailesh@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

एक सुकून साँझ की!

प्रेम में पड़ी स्त्री कुछ कहना चाहती है...
स्तब्ध होकर
वो पाना नहीं चाहती सबकुछ
यह नही होता
वो पाना चाहती है बहुत कुछ
एक दौलत... बेमतलबी हँसी की
थोड़ी सी पागलपंती
एक नजर खास होने की
और हाँ.. एक सुकून साँझ की भी
प्रेम में पड़ी स्त्री शायद जानती हो
अकेलेपन का स्पर्श
पत्तो में छिपा वो बूंद
जो हौले से उतर पड़ता है चाँद पर
वो स्त्री भी छिप जाना चाहती है
उन पत्तो में!
जो उतरना चाहती है ख्वाब में।
हाँ ..वो स्त्री जो मुस्कुरा रही है
बंद आँखों से
न जाने क्या सोंच कर
एक बार देख भी लेती है
हथेलियों को गौर से
कि एक सुकूंन साँझ की मिलेगी
उस रेखा में!!

पूजा
09poojasingh@gmail.com

कविता

तुम्हारी मौजूदगी का एहसास!

तुम्हारे मौजूदगी का एहसास..
अब भी आस पास रहता है
जब चलती है ठंडी हवा
चाँदनी रात में छत पर जब भी टहलता हूँ
झिलमिल सितारों को देखकर
तुम्हारी मौजूदगी का अहसास होता है!

शाम को जब हवा का झोंका आता है..
गुलाब के फूलों की खुशबू से
गमक उठता है तन मन
तुम्हारी मौजूदगी का अहसास होता है!

जेठ की भीषण गर्मी में जब..
वर्षा की पहली फुहार पड़ती है
कितनी शीतलता पूरे बदन को मिलती है
उसी शीतलता में
तुम्हारे मौजूदगी का अहसास होता है!

जब भी कमरे की खिड़कियों को खोलता हूँ..
सामने सड़क पर अनगिनत लोग आते जाते हैं
लगता है तुम भी उसमें से एक होगी
और पहले की तरह अपनी स्कूटी खड़ी कर
दौड़ी मेरे पास आओगी और कहोगी
आज बहुत थक चुकी हूँ
खिड़की से तुम्हारा गेट पर
आने का इंतजार कर रहा हूँ
तब भी तुम्हारे मौजूदगी का अहसास होता है!

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
laldevendra706@gmail.com

अंतर

मनुष्य और गिद्ध में
बस थोड़ा ही तो
फर्क होता है

गिद्ध गिद्ध होता है
जन्मजात और
मानव पहले–पहल
चिड़िया–सा कोमल
दिल के साथ होता है पैदा

फिर धीरे–धीरे
बड़े होते जाते
डैनों के साथ
गिद्ध में परिवर्तित
हो जाता है कभी–कभी!

औरत

एक नदी सी
उफनती
ठहरती–गरजती
बहती चली जाती
जिंदगी के कठोर
चट्टानों से
टकराती
तोड़ती–फोड़ती
राह बनाती
समंदर के
अथाह जल में
मिलने को आतुर।

औरत
एक नदी सी
अंत में
समंदर तक
आते–आते
रेत की
तप्त नदी में
बदल जाती है
जब समंदर का विनाशी रूप
है देखती।

अनिता रश्मि
anitarashmi2@gmail.com

ग़ज़ल

प्रेम बजाज
bajaj.asha22@gmail.com

मत करो मुझसे इतनी मोहब्बत कि जान जाएगी हमारी।
ना छेड़ा करो यूँ साजे–उल्फ़त कि जान जाएगी हमारी।

चले जाओगे गर एक दिन तुम कभी बेवफा बन कर,
सही जाएगी ना तन्हाई, जुदाई मार जाएगी तुम्हारी।

जलेगा दिल हमारा आतिशे– गम में हर पल
तन्हाई में हमें जब – जब याद आएगी तुम्हारी।

दो जिस्म इक जान कभी हुआ करते थे तुम – हम,
बन गए हो सितमगर,येअदा बेकरारी बढ़ाएगी हमारी।

चुभेंगे नश्तर जुदाई के सीने में हमारे जब–जब,
ना आएगा करार हिज्र में हमें ये रात पड़ेगी भारी ।

मौजू–ए–गुफ्तुगू किसी को क्या बताएंगे हम,
टूटा क्यों दिल, दिल्लगी बात बन जाएगी सारी।

राहे–शोक नहीं बागे–बहिश्त सोच के रखना कदम,
कदम लड़खड़ने लगे, के अब तो मौत आएगी हमारी।

शेखर जोशी की कहानियों में
हाशिये का समाज

इबाहुन मॉन

आईएसबीएन : 978-81-945460-6-1

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

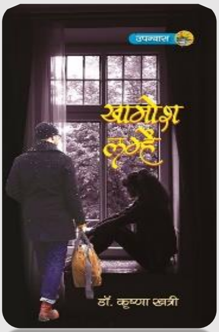

खामोश लम्हें

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-6-6

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

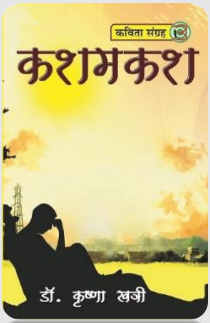

कशमकश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-8-5

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

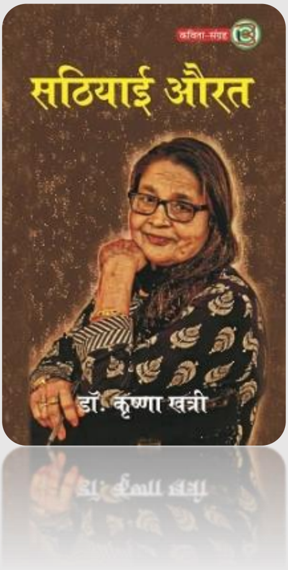

सठियाई औरत

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-9-2
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

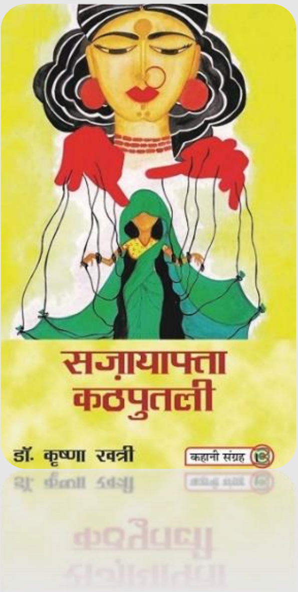

सज़ायाफ़्ता कठपुतली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-946859-0-6
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)